खजुराहो के जैन मन्दिरों की मूर्तिकला

रत्नेश कुमार वर्मा

H
732.411 33
V 59 K

H
732.411 33
V 59 K

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-५

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला : ३३

खजुराहो के जैन मन्दिरों की मूर्तिकला

लेखक
रत्नेश कुमार वर्मा

सम्पादक
डॉ० सागरमल जैन

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-५

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा एम० ए० की उपाधि
के लिए स्वीकृत लघु शोध-निबन्ध का परिवर्द्धित रूप

प्रकाशक :
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
आई० टी० आई० रोड
वाराणसी-२२१००५

प्रकाशन वर्ष :
सन् १९८४

प्राप्ति-स्थान :
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
आई० टी० आई० रोड, बी० एच० यू०
वाराणसी-२२१००५; फोन : ६६७६२

मूल्य :
रुपये [redacted]

पार्श्वनाथ विद्यापीठ
करौंदी, वाराणसी-५
संशोधित मूल्य
रु० 30/...

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी-२२१०१०

Library IIAS, Shimla
H 732.411 33 V 59 K
00094567

प्रकाशकीय

खजुराहो के जैन-मन्दिरों की मूर्तिकला नामक यह कृति प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। जैन-मन्दिरों एवं मूर्तिकला पर यद्यपि कुछ ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं फिर भी यह क्षेत्र इतना व्यापक एवं अछूता है कि अभी गवेषणात्मक दृष्टि से लिखे गये अनेक ग्रन्थों के निर्माण की सम्भावना बनी हुई है। खजुराहो की मूर्तिकला विश्व-प्रसिद्ध है। उसमें जैनों का जो योगदान है, वह भी किसी प्रकार से कम नहीं है। किन्तु उस सामग्री का न तो सम्यक् मूल्यांकन ही हो पाया है और न वह प्रकाश में ही आ पाई है। खजुराहो की मूर्तिकला पर सामान्यरूप से तो देश-विदेश के अनेक लेखकों ने अपनी कलम चलायी है किन्तु जैन-मन्दिरों की मूर्तिकला पर छुट-पुट लेखों के अतिरिक्त स्वतन्त्र-रूप से अभी तक कुछ भी नहीं लिखा गया था। श्री रत्नेश कुमार वर्मा ने अपने एम० ए० की परीक्षा में यह लघु शोध-निबन्ध तैयार किया था, इस हेतु संस्थान की ओर से उन्हें छात्रवृत्ति भी प्रदान की गई थी। उन्होंने यह लघु शोधनिबन्ध गवेषणात्मक दृष्टि से पूरी प्रामाणिकता के साथ परिश्रमपूर्वक लिखा है। हमें आशा है कि विद्वत्जगत् में इस कृति को योग्य सम्मान प्राप्त होगा।

जैन कला के अध्ययन में श्री रत्नेश कुमार वर्मा की रुचि बढ़ रही है। वे अब पी-एच० डी० की उपाधि हेतु जैन-शासन-देवताओं की मूर्तिकला का अध्ययन कर रहे हैं। हम उनकी इस अभिरुचि का अभिनन्दन करते हैं। ग्रन्थ के प्रकाशन की इस वेला में हम उनके इस लघु शोध-निबन्ध के निदेशक एवं संस्थान के ही भूतपूर्व शोधछात्र डा० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहेंगे, जिन्होंने अपने कुशल-निर्देशन में इसे तैयार करवाया और जो जैन कला के गवेषणात्मक अध्ययन में न केवल स्वयं रुचि लेते हैं अपितु दूसरों को भी प्रेरित करते रहते हैं। संस्थान के निदेशक डा० सागरमल जैन के भी हम आभारी हैं, जिन्होंने न केवल इस ग्रन्थ के प्रणयन में प्रेरणा दी अपितु इसके दिशा-निर्देश, सम्पादन एवं प्रकाशन में भी पूरी रुचि प्रदर्शित की है। इसके साथ ही हम शोध-सहायक डा० रविशंकर मिश्र एवं डा० अरुण प्रताप सिंह के भी आभारी हैं, जिन्होंने ग्रन्थ की प्रूफ-रीडिंग एवं मुद्रण आदि कार्यों में सहयोग देकर इस प्रकाशन को सम्भव बनाया। अन्त में सुन्दर, कलात्मक मुद्रण के लिए हम महावीर प्रेस, भेलूपुर के भी आभारी हैं।

भूपेन्द्रनाथ जैन
मन्त्री
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान सञ्चालक समिति

दो शब्द

खजुराहो के जैन-मन्दिरों की मूर्तिकला नामक श्री रत्नेश कुमार वर्मा की इस कृति को इसके प्रणयन तथा प्रकाशन काल में आद्योपांत देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यद्यपि खजुराहो की मूर्तिकला विश्व-विश्रुत है किन्तु उसमें जैनों का कितना अवदान है, यह सामान्यतः अज्ञात ही रहा है। श्री रत्नेश कुमार वर्मा ने उसके इस पक्ष को अपने अध्ययन के द्वारा उजागर करने का जो यह प्रयत्न किया है, वह स्तुत्य ही है। खोज का अर्थ यही है कि उन क्षेत्रों को जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं उजागर किया जाय। यह कृति यद्यपि लघुकाय है किन्तु इसके सम्बन्ध में इतना निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि इसमें हमें एक प्रामाणिक तथा गवेषणात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। प्रस्तुत कृति सप्त अध्यायों में विभक्त है और इसका प्रत्येक अध्याय जैन मूर्तिकला के एक-एक विशिष्ट आयाम को स्पष्ट करता है।

आज जैन कला के विविध पक्षों को उजागर करने के लिये न केवल बड़े-बड़े महाकाय ग्रन्थों के प्रकाशन की आवश्यकता है अपितु इस प्रकार के छोटे-छोटे मोनोग्राफस् का प्रकाशन भी अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है और इसी दृष्टि को लक्ष्य में रखकर मैंने पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान के माध्यम से उसे प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। कृति उपयोगिता एवं गम्भीरता दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। श्री रत्नेश कुमार वर्मा जैसे युवा लेखकों के इस प्रकार के प्रयत्न न केवल अभिनन्दनीय हैं अपितु प्रोत्साहनीय भी हैं। मैं जैन समाज से यह अपेक्षा करूँगा कि ऐसे योग्य एवं प्रतिभासम्पन्न युवा लेखकों को प्रोत्साहित कर जैन-विद्या के विविध आयामों को उजागर करने में अपनी रुचि प्रदर्शित करें।

डॉ० सागरमल जैन
निदेशक
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी–५

प्राक्कथन

जैन धर्म और दर्शन पर यद्यपि पर्याप्त कार्य हुआ है किन्तु जैन कला एवं स्थापत्य पर अपेक्षित विस्तार के साथ शोध कार्य की नितान्त आवश्यकता है। ब्राह्मण एवं बौद्ध कला सामग्री के समान ही जैन कला भी अपनी क्षेत्रीय विभिन्नताओं एवं विषयों के वैविध्य की दृष्टि से विशेष समृद्ध रही है। जैन देवकुल पर हिन्दू और बौद्ध देवी-देवताओं का प्रभाव भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। आज इस बात की आवश्यकता है कि तीनों प्रमुख भारतीय धर्मों के मूल समान तत्त्वों पर गम्भीरता से विचार किया जाए, जो कालान्तर में अलग-अलग शाखाओं में बँटकर विकसित हुईं। इन धर्मों के बीच देवी-देवताओं तथा अन्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान को समझना भी अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त रोचक होगा। किन्तु ऐसे अध्ययन के पूर्व यह भी आवश्यक है कि तीनों धर्मों तथा उनसे सम्बन्धित कला-परम्पराओं को अलग-अलग उनकी समग्रता और ऐतिहासिक विकास के क्रम में आकलित किया जाय। कला की साहित्य या परम्परा पर निर्भरता सर्वविदित है। भारत में धर्म और कला मुख्यतः सिद्धान्त और व्यवहार के रूप में एक दूसरे से जुड़े हैं।

जैन कला और स्थापत्य के विकास-क्रम को समग्र और व्यवस्थित रूप में समझने के लिए यह सर्वथा आवश्यक है कि पहले विभिन्न जैनकला-केन्द्रों की प्रतिमाओं एवं मन्दिरों का विस्तृत अध्ययन किया जाए और तब अलग-अलग स्थलों की सामग्रियों को उनके विकास-क्रम में देखा और परखा जाए। इस दृष्टि से श्री रत्नेश कुमार वर्मा का प्रयास प्रशंसनीय है। 'खजुराहो के जैन-मन्दिरों की मूर्तिकला' शीर्षक से प्रस्तुत इस पुस्तक में श्री रत्नेश कुमार वर्मा ने अपेक्षित विस्तार और सूक्ष्मता के साथ उपलब्ध सामग्री का विवेचन किया है।

खजुराहो राष्ट्रीय महत्त्व का कलाकेन्द्र है। खजुराहो के मन्दिर अपनी स्थापत्यगत योजना और विशालता के लिए तथा मूर्तियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य, आकर्षण और तीखी भाव-भंगिमाओं वाली शरीर-रचना और शास्त्रीय विवरणों के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाने वाली देव-मूर्तियों की दृष्टि से विश्व-प्रसिद्ध हैं। खजुराहो की देव-मूर्तियाँ धार्मिक महत्त्व की हैं। इन मन्दिरों में जीवन के विभिन्न पक्षों का भी अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक रूप में अंकन हुआ है, जिनमें सम्पूर्ण समकालीन जीवन की झाँकी प्रस्तुत है। मनमोहक भाव-भंगिमाओं वाली अप्सरा मूर्तियाँ और काम कला से सम्बन्धित अंकन विदेशी पर्यटकों के लिए वि शेषरूप से आकर्षण के विषय हैं।

खजुराहो में ब्राह्मण मन्दिरों के साथ ही जैन मन्दिरों का भी निर्माण हुआ। पार्श्वनाथ, आदिनाथ, घण्टाई और शान्तिनाथ मन्दिरों के अतिरिक्त कम से कम २० अन्य जैन मन्दिर भी इस स्थल पर थे। जैन मन्दिरों की स्थापत्य योजना भारतीय परम्परा की नागर शैली के मन्दिरों के अनुरूप तथा उसी स्थल के ब्राह्मण मन्दिरों के समान है। खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मन्दिर की मूर्तियाँ पूरी तरह ब्राह्मण प्रभाव का संकेत देती हैं। इस मन्दिर पर विष्णु, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, काम, राम, बलराम आदि की स्वतन्त्र तथा शक्ति सहित आलिंगन मूर्तियाँ हैं। इन सबसे बढ़कर कामकला से सम्बन्धित चार युगलों का अंकन भी इसी बात को प्रकट करता है। पार्श्वनाथ मन्दिर की इन मूर्तियों को केवल जैन सन्दर्भ में न देखकर खजुराहो की सम्पूर्ण मूर्तियों के व्यापक सन्दर्भ में देखना अधिक उपयुक्त होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि श्री रत्नेश कुमार वर्मा ने एम० ए० अन्तिम वर्ष की परीक्षा के लिए प्रस्तुत खजुराहो की जैन मूर्तियों से सम्बन्धित शोध-प्रबन्ध को पूरी तरह परिमार्जित करके एक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया है। ग्रंथ के सात अध्यायों में से अन्तिम चार अध्याय अपेक्षित विस्तार के साथ खजुराहो की जैन मूर्तियों के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। सामग्री के सूक्ष्म परीक्षण और साथ ही उनके तुलनात्मक अध्ययन पर भी सतर्क दृष्टि रखी गई है। खजुराहो के जैन मन्दिरों की काम-मूर्तियों से सम्बन्धित छठा अध्याय जैनकला के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है और इसमें निश्चित मान्यताओं के अन्दर बँधकर जैनधर्म और कला के अध्ययन की सामान्य स्वीकृत पद्धति से अलग हटकर अध्ययन किया गया है, जो प्रशंसनीय है।

इस पुस्तक में खजुराहो की जिन एवं यक्ष-यक्षी तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों का प्रतिमा-लक्षण की दृष्टि से स्तरीय विवेचन हुआ है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में जिन एवं यक्ष-यक्षी लक्षणों की तालिका, सन्दर्भ-सूची एवं चित्रावली भी दी गई है, जो पुस्तक के महत्त्व को और भी बढ़ा देती है।

मैं इस पुस्तक के लिए श्री वर्मा को साधुवाद देता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक जैनकला पर कार्य करने वाले शोध-प्रज्ञों एवं अन्य सामान्य जिज्ञासु जनों के लिए समान रूप से उपयोगी होगी; साथ ही भविष्य में इस दिशा में विस्तृत अध्ययन का मार्ग भी प्रशस्त करेगी।

मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी
व्याख्याता, कला इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

आमुख

जैन धर्म भारत ही नहीं वरन् विश्व के उन प्रमुख जीवित धर्मों में से एक है, जिन्होंने मानव-समाज को नई दिशा प्रदान की है। प्राचीन भारतीय संस्कृति को जैनधर्म ने धरोहर के रूप में शास्त्र एवं कला दोनों ही रूपों में संजोये रखा है। जैन धर्म के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति की कलागत अभिव्यक्ति अद्भुत है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म समान रूप से विकसित होते रहे हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता से ही भारतीय कलाकृतियों के निर्माण की पृष्ठभूमि में एक आध्यात्मिक भावना कार्य करती रही है, जो भारतीय कला की अपनी निजी विशेषता है। इस विशेषता का उत्कर्ष हम गुप्तकालीन कलाकृतियों में देखते हैं, जब भारतीय कला अपनी पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी।

प्राचीन काल से ही भारतीय शासकों द्वारा धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी गई। जिसके कारण सामान्यतः सभी धर्मों से सम्बन्धित कलाकृतियों को विकास का पूरा अवसर प्राप्त हुआ। प्राचीन काल से ही जैन धर्म भारत का प्रमुख धर्म रहा है।

विभिन्न स्थलों पर जैन धर्म से सम्बन्धित कलाकृति अनेक संख्या में मिलती हैं। इन कलाकृतियों के निर्माण का सिद्धान्त-पक्ष भी विभिन्न श्वेताम्बर और दिगम्बर प्रतिमाशास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मैंने खजुराहो की जैन मूर्तियों के प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन का एक नम्र प्रयास किया है। अपने अध्ययन के प्रसंग में खजुराहो की अत्यन्त रोचक यात्रा भी की है और वहाँ की सामग्री का स्वयं संकलन एवं अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में मैंने खजुराहो के जैन मन्दिरों एवं स्थानीय संग्रहालयों की छोटी-बड़ी मूर्तियों के सूक्ष्म-निरीक्षण का आरम्भिक प्रयास किया है। खजुराहो से सम्बन्धित कुछ जैन मूर्तियाँ खजुराहो से बाहर भी प्राप्त हुई हैं, हमने उन्हें भी अपने अध्ययन में सम्मिलित किया है। सारांशतः प्रस्तुत ग्रन्थ में मैंने खजुराहो की सम्पूर्ण जैन शिल्प-सामग्री के विवेचन का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल ७ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय प्रस्तावना के रूप में है जिसमें खजुराहो की भौगोलिक स्थिति एवं उसके सामान्य महत्त्व की चर्चा है।

कलाकेन्द्र के रूप में खजुराहो के विकास को भलीभाँति समझने के लिये मैंने राजनीतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि का भी उल्लेख किया है। इसी प्रसंग में खजुराहो में जैन धर्म की स्थिति पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त खजुराहो के चन्देल मन्दिरों की सामान्य स्थापत्य एवं शैलीगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, इसके बाद खजुराहो के जैन मन्दिरों एवं मूर्ति-अवशेषों का अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय में जैन देवकुल का उल्लेख किया गया है। साथ ही जैन देवकुल का सामान्य और आवश्यकतानुसार प्रतिमा लाक्षणिक निरूपण भी किया गया है। तृतीय अध्याय में कालक्रमानुसार जिन-मूर्तियों के सामान्य विकास को दिखाया गया है। जिन-मूर्तियों का यह सामान्य विकास-क्रम खजुराहो की जिन-मूर्तियों को समझने में सहायक होगा। वास्तव में द्वितीय एवं तृतीय अध्याय की सामग्रियां अगले अध्यायों के लिये पृष्ठभूमि का कार्य करेंगी।

चौथा अध्याय हमारे अध्ययन का मूल केन्द्र है, जिसमें खजुराहो की जिन मूर्तियों की विस्तार से चर्चा की गई है। इस अध्याय में मैंने प्रारम्भ में खजुराहो की जिन-मूर्तियों की सामान्य विशेषतायें बतलाई हैं और उसके बाद मुखी जिन-मूर्तियों का अलग-अलग उल्लेख किया है। अन्त में जिनों की द्विमुखी-त्रिमुखी और चौमुखी मूर्तियों की चर्चा की गई है।

पांचवे अध्याय में खजुराहो की जिनेतर मूर्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विषय की दृष्टि से जिनों के अतिरिक्त खजुराहो में उपलब्ध अन्य सभी मूर्तियों की संक्षिप्त विवेचना की गई है।

छठा अध्याय अत्यन्त ही रोचक विषय पर आधारित है जिसके अन्तर्गत जैन मन्दिरों पर काम-मूर्ति के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। काम-मूर्तियों के अंकन के सम्बन्ध में जितनी भी अटकलें लगाई जाती रही हैं, उनकी अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुये कतिपय नवीन तथ्यों को उल्लिखित किया गया है।

अन्तिम अध्याय उपसंहार के रूप में है, जिसमें मैंने सभी पूर्ण विवेचित अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अंत में जिन-मूर्तियों को स्पष्टतया समझने के लिये जिन-प्रतिमा-लक्षण शीर्षक नाम से एक परिशिष्ट भी दिया गया है। अन्त में मूल एवं सहायक ग्रन्थों की सूची दी गई है। उसके पश्चात् संलग्न चित्रों की सूची है।

ग्रन्थ के प्रकाशन की इस वेला में मैं उन व्यक्तियों, संस्थाओं के प्रति आभार प्रदर्शित कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनसे मुझे किंचित् मात्र भी सहयोग प्राप्त हुआ है।

सर्वप्रथम मैं अपने शोध-निर्देशक डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपने प्रोत्साहन एवं उपयोगी सुझावों द्वारा मेरी लेखनी को गति प्रदान की। वास्तविकता तो यह है कि जो अनजानी-सी प्रेरणा मुझे जैन प्रतिमाशास्त्र के विशेष अध्ययन के लिये प्रेरित कर रही थी उसे मूर्त रूप प्रदान करना तो गुरुवर डा० मारुतिनन्दन तिवारी के अमूल्य सुझावों एवं कुशल निर्देशन द्वारा ही सम्भव हो सका है। उनके कोमल व्यवहार तथा कुशल निर्देशन के लिये मैं उनका चिर कृतज्ञ रहूँगा।

व्यक्तिगत परामर्श एवं उत्साहवर्धन के लिये मैं डा० सागरमल जैन, निर्देशक पी० वी० रिसर्च इन्सटीच्यूट का अत्यन्त ही आभारी हूँ, जिन्होंने अपने विद्वता-पूर्ण परामर्श एवं मृदु व्यवहार द्वारा अनेक प्रकार से सहायता की है। वास्तव में प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का श्रेय डा० सागरमल जैन को ही है, जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को पुस्तक रूप प्रदान करने में हर सम्भव सहायता की है। उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मैं श्री कृष्णदेव एवं श्री एम० ए० ढाँकी (अमेरिकन इन्स्टीच्यूट आफ इण्डियन स्टडीज़) एवं डा० बलराम श्रीवास्तव (रीडर, कला इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) का अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ, जिनसे मुझे हर सम्भव सहायता प्राप्त होती रही है। वास्तव में इन विद्वानों की लगन एवं विद्वता ने मुझे अत्यन्त ही प्रभावित एवं प्रेरित किया है।

मैं विशेषरूप से अपने पूज्य पिता श्री आर० पी० वर्मा० एवं अपनी पूजनीया माता एवं समस्त भाइयों का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने हमेशा मेरा उत्साहवर्द्धन किया और मेरे अध्ययन को संभव बनाया है।

चित्रों के लिये मैं अमेरिकन इन्स्टीच्यूट आफ इण्डियन स्टडीज, वाराणसी तथा डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी का अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ—साथ ही अध्ययन की सुविधा के लिये पी० वी० रिसर्च इन्स्टीच्यूट, वाराणसी; अमेरिकन इन्स्टी-च्यूट आफ इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी; भारत कला भवन, वाराणसी, तथा विभागीय लाइब्रेरी, भारती महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का

विशेषरूप से आभारी हूँ। प्रकाशन एवं प्रूफ-रीडिंग के लिये मैं पी० वी० रिसर्च इन्स्टीट्यूट के निदेशक डॉ० सागरमल जैन, शोध सहायक डॉ० अरुण प्रताप सिंह एवं डॉ० रविशंकर मिश्र का भी हृदय से आभारी हूँ।

अन्त में मैं अपने उन समस्त मित्रों एवं शुभेच्छुओं को धन्यवाद देना चाहूँगा, जिनसे मुझे निरन्तर सहायता एवं प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है।

रत्नेश कुमार वर्मा

संकेत-सूची

आ० स० इं० ऐ० रि०	: आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ऐनुअल रिपोर्ट।
इं० हि० क्वा०	: इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
उ० भा० जै० प्र०	: उत्तर भारत में जैन प्रतिमा विज्ञान
ख० दे० प्र०	: खजुराहो की देव प्रतिमायें
ज० ओ० इं०	: जर्नल आफ द ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा
ज० इं० सो० ओ० आ०	: जर्नल आफ द इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट
ज० ए० ओ०	: जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता
ज० यू० पी० हि० सो०	: जर्नल आफ द यू० पी० हिस्टारिकल सोसायटी
जैन० आ०	: द जैन आइकानोग्राफी
पू० नि०	: पूर्व निर्दिष्ट
प्र० सारो०	: प्रतिष्ठा सारोद्धार
बु० ड० का० रि० इं०	: बुलेटिन ऑफ द डकन कालेज रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना
बु० प्रि० वे० म्यू० वे० इं०	: बुलेटिन ऑफ द प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई।
म० जै० वि० गो० जु० वा०	: महावीर जैन विद्यालय गोल्डन जुबली वाल्यूम, बम्बई, भाग १
सं० पु० प०	: संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ
स्ट० जै० आ०	: स्टडीज इन जैन आर्ट

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

अध्याय प्रथम : प्रस्तावना १-१३

राजनीतिक पृष्ठभूमि (१); धार्मिक पृष्ठभूमि (४); जैन धर्म (५); आर्थिक पृष्ठभूमि (५); खजुराहो के मन्दिर (६)-(क) स्थापत्य की सामान्य विशेषताएँ (६); (ख) निर्माण-काल (ग), मूर्तियों का सामान्य परिचय (८); खजुराहो के जैन मन्दिर (९); पार्श्वनाथ जैन मन्दिर (१०); घण्टाई मन्दिर (१२); आदिनाथ मन्दिर (१२); शान्तिनाथ मन्दिर (१३)।

अध्याय द्वितीय : जैन देवकुल १४-२५

शलाकापुरुष (१६)—(क) तीर्थंकर (१६), (ख) अन्य शलाका पुरुष (१७); यक्ष एवं यक्षी (१९); विद्या-देवियाँ (२०); अन्य देवता (२१)—लक्ष्मी (२१), सरस्वती (२१), इन्द्र (२२), नैगमेषी (२२), बाहुबली (२२), तीर्थंकरों के माता-पिता (२३), पंचपरमेष्ठी (२३), अष्ट-दिक्पाल (२३), नवग्रह (२४), ब्रह्मशान्ति एवं कपर्द्धि यक्ष (२४), गणेश (२४)।

अध्याय तृतीय : जिन-मूर्तियों का सामान्य विकास २६-३३

प्रारम्भिक जिन-मूर्तियाँ (२६)—(क) मौर्य एवं शुङ्गकालीन मूर्तियाँ (२६), (ख) कुषाणकालीन मूर्तियाँ (२८), (ग) गुप्त-कालीन मूर्तियाँ (२९); परवर्ती जिन-मूर्तियाँ (३२)।

अध्याय चतुर्थ : खजुराहो की जिन-मूर्तियाँ ३४-४७

जिन-मूर्तियों की सामान्य विशेषताएँ (३४); स्वतन्त्र जिन-मूर्तियाँ (३७)—आदिनाथ (३७), अजितनाथ (४०), सम्भव-नाथ (४१), अभिनन्दन (४१), सुमतिनाथ (४१), पद्मप्रभ (४२), सुपार्श्वनाथ (४२), चन्द्रप्रभ (४२), शान्तिनाथ (४३), मुनिसुव्रत (४३), नेमिनाथ (४३), पार्श्वनाथ (४३), महावीर (४५); द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी जिन-मूर्तियाँ (४६)।

अध्याय पंचम : खजुराहो की जिनेतर मूर्तियाँ ४८-५५

सामान्य (४८); यक्ष-यक्षी (५०)—कुबेर (५०), चक्रेश्वरी (५०), अम्बिका (५१), पद्मावती (५१), सिद्धायिका (५२), जार्डिन संग्रहालय का विशिष्ट उत्तरंग (५२), लक्ष्मी और सरस्वती (५२), जैन युगल (५३); जैन आचार्य (५३); अष्ट-दिक्पाल एवं नवग्रह (५४)—(क) अष्ट दिक्पाल (५४), (ख) नवग्रह (५४); शुभस्वप्न (५५)।

अध्याय षष्ठ : खजुराहो के जैन-मन्दिरों की काम-मूर्तियाँ ५६-६२

अप्सरा (५९); दम्पति (६०); आलिंगनबद्ध मूर्तियाँ (६१); कामरत मूर्तियाँ (६१)।

अध्याय सप्तम : उपसंहार ६३-६६

परिशिष्ट : जिनप्रतिमालक्षण ६७-६८

सन्दर्भ-सूची ६९-८१

चित्र-सूची ८२

चित्र-फलक ८३-८८

■

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

खजुराहो मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित है। खजुराहो महोबा से ५५ किलोमीटर दक्षिण और पन्ना से ४३ किलोमीटर पश्चिमोत्तर में स्थित है। खजुराहो, जो कभी भव्य एवं विशाल नगर था, अब केवल गाँव के रूप में ही शेष रह गया है। वर्तमान समय में खजुराहो प्राचीनकाल के श्रेष्ठ स्थापत्य अवशेषों एवं शिल्प-वैभव के लिये विश्व प्रसिद्ध है। ये अवशेष मुख्यतः चन्देल शासकों के काल के हैं।

प्राचीन काल से ही भारत के सांस्कृतिक विकास के इतिहास में खजुराहो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। खजुराहो तथा इसके आसपास के क्षेत्र में शुंगकाल तथा गुप्तकाल के अनेक निर्माण सम्बन्धी अवशेष प्राप्त हुये हैं। गुप्तकाल से स्थापत्य कला के क्षेत्र में प्रारम्भ हुये क्रमिक विकास के सोपानों की अगली सीढ़ी के रूप में खजुराहो के शिखर मन्दिर गुप्तकाल एवं मध्यकाल के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं।[1]

खजुराहो चन्देलवंश के शासकों की राजधानी थी। चन्देल शासकों के शासनकाल में खजुराहो में स्थापत्य कला के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुये। खजुराहो के अवशेष स्थापत्य कला के उत्कर्ष के प्रतीक हैं। इनसे हम तत्कालीन कलाकारों की श्रेष्ठता एवं निपुणता का अनुमान लगा सकते हैं। खजुराहो में शैव, शाक्त, वैष्णव तथा जैन सम्प्रदायों के मन्दिरों का निर्माण हुआ। इसकी पृष्ठभूमि में चन्देल शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति थी।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

खजुराहो के निकटवर्ती क्षेत्र को विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है। प्राचीनकाल में इसका नाम वत्स था। मध्ययुग में इसका नाम जेजाभुक्ति या जेजाकभुक्ति था। १४ वीं शती ई० से यह स्थान बुन्देलखण्ड के नाम

---

१. कृष्णदेव, "द टेम्पलस् ऑफ खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया", ऐन्शियण्ट इण्डिया, अं० १५, पृ० ४३-४४।

से प्रसिद्ध है।[1] अबू रिहन, जो १०२२ ई० में कालिन्जर पर आक्रमण के समय सुल्तान महमूद के साथ था, ने इसका खजुराहो के नाम से उल्लेख किया है। यह "जाजाहुति" की राजधानी थी। इब्नबतूता ने, जो १३३५ ई० में भारत आया था, इसका उल्लेख 'खजुरा" नाम से किया है। उसने एक झील का भी वर्णन किया है जो चारों तरफ से मन्दिरों से घिरी हुई थी। चन्देल अभिलेख में "खर्जुरवाहका" का उल्लेख हुआ है, जो खजुराहो का प्राचीन नाम था।[2]

मध्यदेशीय मन्दिर स्थापत्य कला को उत्कृष्ट रूप देने वाले चन्देल शासकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमें सर्वप्रथम खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर वि० सं० १०११ (=९५४ई०) के एक शिलालेख में विवरण मिलता है। इस लेख में चन्देलों का सम्बन्ध ऋषि अत्रि तथा उसके पुत्र चन्द्रात्रेय से जोड़ा गया है और "नृप नन्नुक" को चन्देलवंश का प्रथम राजा माना गया है। परमर्दिदेव के वि० सं० १२५२ (=११९५ई०) के बघारी (या बटेश्वर) शिलालेख में भी चन्देलों की उत्पत्ति अत्रि, चन्द्रमा तथा चन्द्रात्रेय से बतलायी गयी है। अभिलेखीय साक्ष्यों एवं लोकानुश्रुतियों में चन्देलों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न मत प्रतिपादित हैं। पर उन सभी में सामान्यतः चन्देलों की उत्पत्ति चन्द्रमा से बतायी गयी है, जो उनके चन्द्रवंशी क्षत्रिय होने का निर्देश करता है।

चन्देलों ने अपना राजनीतिक जीवन कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों के सामन्तों के रूप में शुरू किया था। चन्देल अभिलेख समान रूप से नन्नुक (८२५-८४० ई०) को वंश का प्रथम शासक मानते हैं। नन्नुक का उत्तराधिकारी उसका पुत्र वाक्पति (८४५-८६५ ई०) हुआ। वाक्पति ने विन्ध्य की ओर चन्देल राज्य की शक्ति का विस्तार किया। वाक्पति के दो पुत्र थे—जयशक्ति और विजयशक्ति। जयशक्ति ने शासन प्रबन्ध की ओर अधिक ध्यान दिया, तथा विजयशक्ति ने राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया। विजयशक्ति के बाद उसका पुत्र राहिल राजा हुआ, जिसके शासन काल में कोई विशेष घटना नहीं हुई।

चन्देलवंश का प्रथम महत्त्वपूर्ण राजा हर्षदेव (९०५-९२५ ई०) हुआ, जो राहिल का पुत्र था। हर्षदेव ने कई राजनीतिक उपलब्धियाँ कीं। सम्भवतः एक सफलता की स्मृति में उसने मातंगेश्वर मन्दिर का निर्माण

---

१. ख० दे० म०, पृ० ३।

२. वही, पृ० ३-१०।

करवाया, जो खजुराहो के रेतीले पत्थर के मन्दिरों में प्राचीनतम है। हर्ष-देव के पश्चात् उसका यशस्वी पुत्र यशोवर्मन (९२५-९५० ई०) गद्दी पर बैठा। यशोवर्मन ने कई विजय कीं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कालिन्जर के किले पर विजय थी। ९५४ ई० के खजुराहो अभिलेख के अनुसार उसने एक भव्य विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया जो वर्तमान लक्ष्मण मन्दिर ही है। स्थापत्य की दृष्टि से यह मन्दिर अपने समय का मध्यभारत का सर्वाधिक विकसित और अलंकृत मन्दिर था।

यशोवर्मन के पश्चात् धंग (९५०-१००८ ई०) गद्दी पर बैठा। सैन्य शक्ति एवं सामरिक प्रतिभा के बल पर उसने पैतृक राज्य को और भी दृढ किया। उसके राज्य की सीमा कालिन्जर से मालवा नदी तक, मालवा नदी से कालिंदी तक, कालिंदी से चेदि राज्य तक और चेदि राज्य से गोप (गोपाद्रि) तक फैली थी। इतने विशाल राज्य की राजधानी होने का गौरव खजुराहो को ही प्राप्त था। विजेता के रूप में तो धंग महान था ही, साथ ही स्थापत्य के संरक्षक के रूप में वह और भी महान था। धंग के शासन काल में खजुराहो में विश्वनाथ और पार्श्वनाथ जैसे श्रेष्ठतम मन्दिरों का निर्माण हुआ।

धंग के पश्चात् उसका पुत्र गंड अल्पकाल के लिये गद्दी पर बैठा (१००८-१०१७ ई०)। उसने शान्तिपूर्वक शासन किया। जगदम्बी और चित्रगुप्त मन्दिरों का निर्माण उसी के शासन काल में हुआ।

गंड के बाद विद्याधर गद्दी पर बैठा (१०१७-१०२९ ई०)। इसके काल में चन्देलवंश गौरव के शिखर पर पहुँच गया था। विद्याधर ने कई राज-नीतिक सफलताएँ अर्जित कीं। उसने न केवल कल्चुरियों तथा परमारों पर विजय प्राप्त कीं बल्कि महमूद गज़नवी के आक्रमण से कालिन्जर के किले की दो बार रक्षा भी की। प्रो० कृष्णदेव का विचार है कि विद्याधर ने अपने पूर्वजों की भाँति ही मंदिर-निर्माण-परम्परा को अक्षुण्ण रखा। खजुराहो के विशालतम एवं श्रेष्ठतम कन्दरिया महादेव मन्दिर का निर्माण इसी के समय में हुआ।

विद्याधर की मृत्यु के पश्चात् कल्चुरियों एवं मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप चन्देल शक्ति का क्रमशः ह्रास होना शुरू हो गया। चन्देल शक्ति के पतन के साथ-साथ खजुराहो का महत्त्व भी क्षीण होता गया। किन्तु खजुराहो में कलात्मक वेग अवरुद्ध न हो सका तथा १२वीं-१३वीं शती ई० तक मन्दिर-निर्माण की परम्परा जीवित रही। कन्दरिया महा-

देव के पश्चात् वामन, आदिनाथ, जवारी, चतुर्भुज आदि कई मन्दिरों का निर्माण हुआ। छोटे होते हुए भी ये मन्दिर निर्माण की दृष्टि से बड़े मन्दिरों के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं। जयवर्मन (१११७ ई०) के अभिलेख से स्पष्ट है कि परवर्ती चन्देल नरेशों ने खजुराहो की अवहेलना नहीं की। खजुराहो के परवर्ती मन्दिर सम्भवतः विद्याधर के विजयपाल (१०२९-५१ ई०) कीर्तिवर्मन (१०७०-९८ ई०) और मदनवर्मन (११२९-६३ ई०) जैसे प्रभावशाली उत्तराधिकारियों के संरक्षण में निर्मित हुये। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनीतिक महत्त्व क्षीण होने के बाद भी चन्देलों के अन्तिम दिवसों तक खजुराहो उनका धार्मिक एवं कलात्मक केन्द्र बना रहा।[1]

धार्मिक पृष्ठभूमि

मन्दिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में शासकीय समर्थन और प्रश्रय का विशेष महत्व होता है, और इस समर्थन के मूल में शासकों की धार्मिक आस्था की निर्णायक भूमिका होती है। अतः हम यहाँ संक्षेप में चन्देल शासकों की धार्मिक आस्था की चर्चा करेंगे। भारतीय शासक प्राचीन-काल से ही धर्म के प्रति सहिष्णु रहे हैं। उन्होंने अपने व्यक्तिगत धर्म को शायद ही कभी जनता पर लादने का प्रयास किया हो। यही कारण है कि प्रायः समस्त धर्मों को विभिन्न युगों में राजकीय समर्थन एवं प्रश्रय मिलता रहा।

चन्देल शासक धार्मिक दृष्टि से शैव तथा वैष्णव धर्म से सम्बन्धित थे। खजुराहो का सबसे बड़ा मन्दिर "कन्दरिया महादेव मन्दिर" शैव धर्म से तथा चतुर्भुज मन्दिर वैष्णव धर्म से सम्बन्धित है। अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि सांख्य, महाभाष्य आदि दार्शनिक तथ्यों से तत्कालीन विद्वानों का परिचय था। बौद्ध तथा जैन धर्म भी चन्देल शासकों के

---

१. विस्तृत चन्देल इतिहास के लिए द्रष्टव्य :

(क) दीक्षित, आर० के०, "चन्देल्स ऑफ जेजाकभुक्ति ऐण्ड देयर टाइम्स, (पी-एच० डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९५०)।

(ख) बोस, एन० एस०, हिस्ट्री ऑफ चन्देल्स, कलकत्ता, १९५६।

(ग) मित्रा, एस० के०, अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो।

(घ) पाठक, विशुद्धानन्द, उ० भा० रा० इ०, वाराणसी, १९७३।

समय लोकप्रिय धर्मों में था। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित बुद्ध तथा तारा (बौद्ध देवी) की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।[1]

जैन धर्म

धर्मसहिष्णु चन्देल शासकों ने जैन धर्म को भी पूरा समर्थन और प्रश्रय दिया था। इसकी पुष्टि न केवल खजुराहो के तीन विशाल जैन मन्दिरों एवं वहाँ की बिखरी प्रचुर जैन सम्पदा से ही होती है, वरन् उनके अधिकार क्षेत्र में सर्वत्र प्राप्त होने वाली अनेक जैन मूर्तियों एवं मन्दिरों से भी होती है। धंग के शासनकाल में निर्मित पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि चन्देल शासकों ने जैन धर्म को संरक्षण दिया था। जैन आचार्य वासवचन्द्र धंग के महाराजगुरु थे।[2] यद्यपि वासवचन्द्र कभी मन्त्री नहीं रहे, किन्तु अपने महाराजगुरू पद का उन्होंने समुचित उपयोग किया होगा, जिसका प्रमाण धंग के शासन-काल में निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर है। साथ ही व्यापारी पाहिल्ल द्वारा पार्श्वनाथ मन्दिर को पाँच वाटिका दान दिये जाने के फलस्वरूप धंग द्वारा उसके सम्मान का उल्लेख भी जैन धर्म के प्रति शासक के उदार दृष्टि-कोण का ही सूचक है। पार्श्वनाथ मन्दिर के वि० सं० १०११ (= ९५४ ई०) के अभिलेख में धंग के साथ ही महाराजगुरु वासवचन्द्र का भी उल्लेख है। पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण सम्भवत: पाहिल्ल द्वारा किया गया था।[3] मन्दिर की विशालता, भव्यता एवं उसकी भित्तियों पर हिन्दू देव परिवार के ब्रह्मा, विष्णु, शिव सहित कई देवताओं का स्वतन्त्र एवं अपनी शक्तियों के साथ चित्रण मन्दिर के निर्माण में शासकीय सहयोग एवं हिन्दू प्रभाव का स्पष्ट संकेत देता है।

आर्थिक पृष्ठभूमि

जैन धर्म प्रारम्भ से ही व्यापारी एवं व्यवसायियों के मध्य लोकप्रिय रहा है। जैनधर्म एवं कला के विकास में इस वर्ग का सर्वाधिक योगदान रहा है।[4] खजुराहो के विभिन्न मूर्ति लेखों से ज्ञात होता है कि व्यापारी

---

१. बोस, एन० एस०, पू० नि०, पृ० १६०-६१।

२. जेनास, ई०, खजुराहो, १९६०, पृ० ६१।

३. कृष्णदेव, पू० नि० लेख, पृ० ४५।

४. उ० भा० जै० प्र०, पृ० २७-५७।

परिवार के पाहिल्ल, उसके पिता एवं उनके पूर्वजों ने जैन धर्म स्वीकार किया था और लगभग २०० वर्षों (९५४-११५८ ई०) तक जैनधर्म को समर्थन दिया। ये लेख ग्रहपतिवंश के भी जैन धर्मावलम्बी होने की सूचना देते हैं। लेखों में श्रेष्ठी परिवार के विभिन्न सदस्यों, पाहिल्ल, पद्मावती, मल्हण, साल्हे द्वारा आदिनाथ, सम्भवनाथ, नेमिनाथ आदि की मूर्तियों के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[1]

खजुराहो के मन्दिर

(क) स्थापत्य की सामान्य विशेषताएँ—खजुराहो के चन्देलकालीन मन्दिरों में नागरशैली पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। आकार, सौन्दर्य और मूर्ति सम्पदा की दृष्टि से ये मन्दिर भारत के अन्य सब स्मारकों में अद्वितीय हैं। ये मन्दिर शैव, वैष्णव, शाक्त एवं जैन सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। इनमें कोई भी मन्दिर बौद्धधर्म से सम्बन्धित नहीं है। विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बन्धित होते हुए भी उनकी प्रधान वास्तु एवं शिल्प योजना समरूप है. यहाँ तक कि इनमें प्रतिष्ठित देव मूर्तियों के अतिरिक्त एक सम्प्रदाय के मन्दिर को दूसरे समुदाय के मन्दिर से अलग कर पाना भी कठिन है।[2]

खजुराहो के मन्दिर तलच्छन्द एवं ऊर्ध्वच्छन्द में वैयक्तिक विलक्षणता वाले हैं। ये ऊँची जगती पर निर्मित हैं। इनके चारों तरफ किसी प्रकार का घेरा या दीवार नहीं है। तलच्छन्द में ये "लैटिन क्रास" के आकार के हैं, जिसकी लम्बी भुजा पूर्व से पश्चिम दिशा में है। इनके तीन प्रधान अंग गर्भगृह, मण्डप तथा अर्धमण्डप हैं। गर्भगृह तथा मण्डप के मध्य अन्तराल है। विकसित कला शैली के मन्दिरों में प्रदक्षिणापथ से संयुक्त महामण्डप भी देखा जाता है।[3]

तलच्छन्द के समान ऊर्ध्वच्छन्द में भी विलक्षणता है। जगती पर लम्बाकार ऊपर उठने वाला अधिष्ठान है, जिसमें उत्कीर्ण अभिप्रायों का अलंकरण दर्शनीय है। अधिष्ठान के ऊपर जंघा या बाह्य दीवार भाग है, जिसमें प्रकाश एवं वायु के लिये जालीदार खिड़कियों की व्यवस्था है। खिड़कियों के बीच-बीच में कलापूर्ण प्रतिमाओं का अंकन है। मन्दिर के भीतरी भाग की अपेक्षा बाह्य भागों में अलंकरण की अधिक प्रवृत्ति रही

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ५३-५५।

२. ख० दे० प्र०, पृ० ९।

३. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ नार्थ इण्डिया, दिल्ली, १९६९, पृ० ५५-६४।

है। पर्सी ब्राऊन के शब्दों में भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में ऐसी हृदयग्राही रचनाएँ बहुत कम पायी जाती हैं।[1]

जनश्रुति के अनुसार खजुराहो में ८५ मन्दिर थे। किन्तु अब केवल २५ मन्दिर ही सुरक्षित हैं। ये मन्दिर खजुराहो के आस-पास फैले हैं। इन मन्दिरों में मध्यदेशीय नागरशैली का उत्कृष्टतम स्वरूप प्राप्त होता है। मन्दिरों के विभिन्न अंगों पर कलाकारों की हस्तलाघवता एवं कौशल का आश्चर्यजनक प्रदर्शन देखा जा सकता है। सुविधा की दृष्टि से खजुराहो के मन्दिरों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है—पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी। पश्चिमी समूह में सबसे अधिक मन्दिर हैं, जिनमें प्रमुख—कन्दरिया महादेव, लक्ष्मण मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर, देवी जगदम्बी मन्दिर और चित्रगुप्त मन्दिर हैं। इस समूह के अन्य मन्दिर आकार में छोटे हैं। पूर्वी समूह के मन्दिरों को धर्म की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं–हिन्दू मन्दिर तथा जैन मन्दिर। दक्षिणी समूह में मात्र दो महत्त्वपूर्ण मन्दिर दुलादेव और चतुर्भुज (या जतकारी) हैं। दोनों मन्दिर हिन्दू धर्म के हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मन्दिरों के भग्नावशेष भी उपलब्ध हैं।[2]

(ख) **निर्माण काल**—खजुराहो के मन्दिरों का काल बहुत निश्चित रूप से नहीं ज्ञात है। विद्वानों ने मन्दिरों के निर्माण का काल दसवीं शती ई० से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य निश्चित करने का प्रयास किया है। किन्तु यह सर्वमान्य नहीं है। श्री कृष्णदेव ने इस समस्या को हल करने का प्रयास किया है। अभिलेखीय साक्ष्यों के साथ-साथ मन्दिरों के विभिन्न स्थापत्य, शिल्प एवं अलंकरण के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करके उन्होंने प्रतिपादित किया है कि प्राचीनतम मन्दिर ८०५ ई० के पूर्व तथा अन्तिम मन्दिर ११ वीं शती ई० के पश्चात् निर्मित हुआ। निर्माणकाल की दृष्टि से मन्दिरों को उन्होंने दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग पूर्ववर्ती मन्दिरों का है, जिसमें चौसठ योगिनी, लालगुआ, महादेव, ब्रह्मा, मातंगेश्वर और वराह मन्दिर आते हैं। अन्य सभी मन्दिर परवर्ती समूह में आते हैं।[3]

---

१. ब्राऊन, पर्सी, इण्डियन आर्किटेक्चर (हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट पीरियड्स), बम्बई, १९७१, पृ० ११२-१३।

२. ख० दे० प्र०, पृ० ११।

३. कृष्णदेव, "द टेम्पल्स ऑफ खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया", पृ० ४९-५१।

(ग) **मूर्तियों का सामान्य परिचय**--स्थापत्य के साथ ही मूर्तिकला की दृष्टि से भी खजुराहो के मन्दिरों का अपूर्व महत्त्व है। उपलब्ध मूर्तियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।[१] प्रथम वर्ग में मन्दिरों के गर्भगृह में पूजनार्थ प्रतिष्ठित देव मूर्तियाँ आती हैं, जो प्रायः चारों ओर से कोर कर बनायी गई हैं। ये मूर्तियाँ परम्परागत रूप में बनी हैं।

द्वितीय वर्ग में परिकर, पार्श्व और आवरण देवताओं की मूर्तियाँ आती हैं, जो रथिकाओं या जंघाओं में उत्कीर्ण हैं। ये चारों ओर से कोर कर अथवा अंशतः कोर कर बनायी गई हैं। तृतीय वर्ग में अप्सराएँ अथवा सुर-सुन्दरियाँ आती हैं, जो खजुराहो की सर्वोत्तम मूर्तियाँ हैं। मन्दिरों के विभिन्न भागों में उत्कीर्ण सुर-सुन्दरियों की मूर्तियाँ सर्वोत्कृष्ट वस्त्राभूषणों से अलंकृत, मनोहारी कान्ति से युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर हैं। देवताओं के अनुचरियों के रूप में वे विभिन्न मुद्राओं में नृत्य करती हुई प्रदर्शित हैं। उनके हाथ अंजलि अथवा अन्य किसी मुद्रा में प्रदर्शित हैं। वे आराध्य देव की पूजा के निमित्त पद्म, दर्पण, घट, वस्त्रालंकार आदि भेंट लिये हुए भी प्रदर्शित हैं। अधिकांश सुर-सुन्दरियाँ सामान्य मनोभावों एवं क्रिया-कलापों को व्यक्त करती हुई चित्रित हैं। प्रायः उनमें तथा परम्परागत नायिकाओं में भेद कर पाना कठिन हो जाता है। चतुर्थ वर्ग के अन्तर्गत धर्मेतर मूर्तियाँ आती हैं। इनके विषय विविध हैं, जैसे युद्ध, आखेट, परिवार के दृश्य, गुरु-शिष्य, कार्यरत श्रमिक, संगीत और नृत्य में तल्लीन नर-नारियाँ, मिथुन-युगल अथवा मिथुन समूह आदि।[२] अन्तिम वर्ग में पशु-मूर्तियाँ आती हैं, जिनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय शार्दूल हैं। इसे व्याल, वराल, विराल तथा विरालिका भी कहते हैं।[३] यह कला में प्रदर्शित एक कल्पित पशु है, जो प्रधानतः उग्र सश्रृंग सिंह के रूप में चित्रित हुआ है। सामान्यतः इसकी पीठ पर एक सशक्त सैनिक सवार है, जिस पर पीछे की ओर से एक योद्धा प्रहार कर रहा है। इस प्रधान शार्दूल के अनेक रूप मानव (नरव्याल), शुक (शुकव्याल), वराह (सूकर-व्याल), गज (गजव्याल) आदि के मस्तकों से युक्त हैं।

गुप्त कला की विशेषताओं का प्रभाव होते हुए भी यह मध्ययुगीन कला है। भारत के मध्य में स्थित होने के कारण खजुराहो की मूर्तियों

१. ख० दे० प्र०, पृ० २२-२४।

२. चन्द्रा, पी०, ललितकला, नं० १२, पृ० ९८-१०७।

३. ढाकी, एम० ए०, द व्याल फिगरस् ऑन द मेडिवल टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, वाराणसी, १९६५।

में पूर्वी एवं पश्चिमी भारतीय कलाओं का मनोरम समन्वय देखा जा सकता है। भव्यता, भावों की गहनता और शिल्पी की आन्तरिक भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इस कला की तुलना यद्यपि गुप्त कला से नहीं की जा सकती है, किन्तु जिस ओजस्विता से यह कला स्पन्दित है वह आश्चर्यजनक है। मन्दिरों दिवालों की मूर्तियाँ साकार सौन्दर्य के मनभावन गीत सी लगती हैं। सभी दृष्टियों से खजुराहो की मूर्तियाँ उड़ीसा की मूर्तियों से परिष्कृत हैं तथा उनके शरीर की रेखाएँ अधिक जटिल एवं भावपूर्ण हैं। वस्तुतः खजुराहो की कला समकालीन कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है।

खजुराहो के मन्दिरों की मूर्तियाँ प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से और भी महत्त्व की हैं। हिन्दू और जैन धर्मों से सम्बन्धित विविध देव-मूर्तियों की झाँकी देखते ही बनती है। खजुराहो के जैन मन्दिरों में जिन-मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, और प्रवेश एवं रथिकाओं में विविध जैन देवी-देवताओं का का चित्रण हुआ है। पार्श्वनाथ मन्दिर के जंघा भाग में अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं, जिनसे कुछ तो प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।[1]

खजुराहो के जैन मन्दिर

सामान्य परिचय—खजुराहो में सम्प्रति तीन प्राचीन जैन मन्दिर एवं कई नवीन जैन मन्दिर सुरक्षित हैं। ये प्राचीन जैन मन्दिर पार्श्वनाथ, आदिनाथ और घण्टाई जैन मन्दिर हैं। इन तीन मन्दिरों के उत्तरंगों के अतिरिक्त खजुराहो में १७ अन्य उत्तरंग भी मिले हैं, जिन पर तीर्थंकरों एवं जैन देवकुल के यक्षियों आदि की आकृतियाँ बनी हैं। ये उत्तरंग निश्चित रूप से उपर्युक्त मन्दिरों के अतिरिक्त अन्य जैन मन्दिरों के अस्तित्व की सूचना देते हैं, जो सम्भवतः छोटे आकार के मन्दिर रहे होंगे।[2]

खजुराहो ग्राम के समीप स्थित जैन मन्दिरों का समूह खजुराहो का पूर्वी देवमन्दिर समूह कहलाता है। सम्प्रति केवल पार्श्वनाथ एवं आदिनाथ मन्दिर ही पूर्णतः सुरक्षित हैं। घण्टाई मन्दिर के अतिरिक्त

---

१. ख० दे० प्र०, पृ० २४-२७।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, "खजुराहो के जैन मन्दिरों के डोर लिण्टल्स पर उत्कीर्ण जैन देवियाँ," अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ६, पृ० २५१-५४।

खजुराहो के अन्य सभी प्राचीन एवं नवीन जैन मन्दिर एक विशाल परकोटे में स्थित हैं।

खजुराहो की सम्पूर्ण जैन शिल्प-सामग्री का समय लगभग ९५० ई० से ११५० ई० हैं। खजुराहो की जैन मूर्तियाँ दिगम्बर सम्प्रदाय की कृतियाँ हैं। जैन तीर्थङ्करों की निर्वस्त्र प्रतिमाएँ एवं मन्दिरों के प्रवेश द्वारों पर १६ मांगलिक स्वप्नों के पंक्तिबद्ध अंकन खजुराहो के जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों को दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध करते हैं। ज्ञातव्य है कि तीर्थंकरों की माताओं ने उनके जन्म के पूर्व की मांगलिक स्वप्न देखे थे। श्वेताम्बर परम्परा में उन मांगलिक स्वप्नों की संख्या चौदह तथा दिगम्बर परम्परा में सोलह बतलाई गई है। अब हम संक्षेप में खजुराहो के प्रमुख जैन मन्दिरों के स्थापत्य की विशेषताओं एवं शिल्प-सामग्री का उल्लेख करेंगे।

पार्श्वनाथ जैन मन्दिर

यह मन्दिर खजुराहो के जैन मन्दिरों में प्राचीनतम और स्थापत्यगत योजना एवं शिल्प वैभव की दृष्टि से विशालतम एवं श्रेष्ठतम है। यह मन्दिर मूलतः प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को समर्पित था। गर्भगृह में १८६० ई० स्थापित काले पत्थर की पार्श्वनाथ प्रतिमा के कारण ही कालान्तर में इसे पार्श्वनाथ मन्दिर कहा जाने लगा। गर्भगृह की मूल प्रतिमा अपने स्थान से गायब है, परन्तु प्रतिमा का सिंहासन एवं परिकर गर्भगृह में ही सुरक्षित है। गर्भगृह की मूल प्रतिमा के सिंहासन पर आदिनाथ का लांछन वृषभ उत्कीर्ण है और सिंहासन के दोनों छोरों पर आदिनाथ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख और चक्रेश्वरी अंकित हैं। मुख्य तीर्थंकर के दोनों ओर सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ थीं, जो यथास्थान सुरक्षित हैं। साथ ही मन्दिर के ललाट बिम्ब पर भी आदिनाथ की ही यक्षी, चक्रेश्वरी अंकित है। ये सभी बातें स्पष्टतः मन्दिर के आदिनाथ को समर्पित रहे होने की सूचना देती हैं।[1]

पार्श्वनाथ मन्दिर पंचायतन प्रकार का मन्दिर है। एक धारणा के अनुसार मन्दिर के पाँच आवश्यक अंगों (अर्धमण्डप, महामण्डप, अन्तराल, प्रदक्षिणापथ और गर्भगृह) से सज्जित मन्दिर को पंचायतन शैली का मन्दिर माना गया है। पार्श्वनाथ मन्दिर इसी धारणा के अनुसार पाँच

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १५०।

अंगों से सम्पन्न पंचायतन प्रकार का मन्दिर है। यह मन्दिर आकार की दृष्टि से ६८ फीट लम्बा, ३५ फीट चौड़ा है। इस मन्दिर में ९५४ ई० का एक लेख है। यह तिथि मन्दिर के संरचनात्मक विस्तार एवं स्थापत्य सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर भी सही उतरती है। इस मन्दिर का रचनाकाल ९५० ई० से ९७० ई० के मध्य माना गया है।[1] पूर्वाभिमुख पार्श्वनाथ मन्दिर की एक विशेषता यह है कि इसमें पीछे पश्चिम की ओर भी एक गर्भगृह का निर्माण किया गया है और उसमें आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की गई है।

इस मन्दिर की बाह्य भित्ति पर चारों ओर एक के ऊपर एक तीन पट्टों में विभिन्न मूर्तियों का अंकन है। सबसे ऊपरी पंक्ति में विद्याधरों और उनके युग्मों के चित्रण हैं। ऊर्ध्वपंक्ति में विद्याधरों का चित्रण परवर्ती खजुराहो के मन्दिरों की एक विशिष्टता है, जिसका आरम्भ इसी मन्दिर से हुआ है। बाह्य भित्ति के इन्हीं प्रतिमापट्टों के बीच-बीच में सुन्दर जाली के छोटे-छोटे झरोखे छोड़े गये हैं जो भीतर प्रदक्षिणापथ में हवा तथा क्वचित् प्रकाश देकर एक अनोखे रहस्यमय वातावरण की सृष्टि करते हैं। मन्दिर में हवा व प्रकाश की व्यवस्था कुछ समय बाद में की गई मालूम पड़ती है। बाह्य भित्तियों तथा प्रदक्षिणापथ के इन प्रतिमापट्टों पर अंकित मूर्तियों के निर्माण में खजुराह के कलाकारों की निर्माण-क्षमता स्पष्टत देखी जा सकती है।

प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से निचली दोनों पंक्तियों की मूर्तियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें विभिन्न देवताओं, यथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, बलराम, कुबेर आदि की स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ आलिगन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। साथ ही जिनों (लांछन सहित) एवं अष्टदिक्पालों (चतुर्भुज) की भी मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। इनमें विश्व प्रसिद्ध अप्सराओं की मूर्तियाँ भी चित्रित हैं, जिनमें दर्पण देखती, प्रेमी को पत्र लिखती, पैर से काँटा निकालती एवं पायजेब बाँधती अप्सरा-मूर्तियाँ प्रमुख हैं।[2] द्वारशाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह की दीवार पर उत्कीर्ण ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली की कायोत्सर्ग

---

१. कृष्णदेव, पू० नि० लेख, पृ० ५५।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १५०-५१; जैन, नीरज, जैन मान्यूमेण्ट्स ऐट खजुराहो, सतना, १९६८, पृ० १३-१४।

मूर्ति भी उल्लेखनीय है। खजुराहो में बाहुबली की यह अकेली मूर्ति है।[1]

घण्टाई मन्दिर

जैन-मन्दिर समूह के परकोटे के बाहर इस मन्दिर का भग्नावशेष पड़ा है। इस मन्दिर के मण्डप का हिस्सा ही शेष बचा है। केवल मण्डप के बीच के स्तम्भ तथा गर्भगृह का कुछ हिस्सा बचा है। मण्डप के स्तम्भ के ऊपर कुछ अलंकरण बने हैं। स्तम्भ की सुन्दरता देखकर मन्दिर की भव्यता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। यह मन्दिर अपने सुरक्षित अवस्था में सम्भवतः खजुराहो के विशालतम मन्दिरों में से एक था। स्थापत्य, मूर्तिकला तथा लिपि सम्बन्धी प्रमाणों के आधार पर घण्टाई मन्दिर को पार्श्वनाथ मन्दिर के बाद का अर्थात् दसवीं शती के अन्त में निर्मित स्वीकार किया गया है।[2] सम्भवतः यह मन्दिर भी प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को ही समर्पित था। कनिंघम ने यहाँ से लगभग २० प्रतिमाएँ प्राप्त की थीं, जिनमें तीर्थंकरों तथा शासन देवियों की मूर्तियाँ थीं। इन मूर्तियों पर "घण्टाई" शब्द भी अंकित है। घण्टाई शब्द अपने में विशेष अर्थ रखता है। स्तम्भों पर सिंह पुरुषों की जो सजावट है, उन्हीं के मुख से झालर तथा लटकी हुई घण्टियाँ प्रदर्शित की गई हैं। सम्भवतः इसी कारण यहाँका नाम घण्टाई पड़ा होगा।

आदिनाथ मन्दिर

आदिनाथ मन्दिर अपनी योजना में बहुत विशाल नहीं है। वामन मन्दिर से आदिनाथ का मन्दिर बड़ा है, किन्तु पार्श्वनाथ जैसे विकसित मन्दिरों से छोटा है। तीर्थंकर आदिनाथ का यह मन्दिर निरान्धार प्रासाद है, जिसका शिखरयुक्त गर्भगृह और अन्तराल मात्र अवशिष्ट है। सामान्य योजना, निर्माण शैली तथा मूर्तिकला की दृष्टि से यह वामन मन्दिर (लगभग १०५०-७५ ई०) के अति निकट है। इस आधार पर आदिनाथ मन्दिर को ग्यारहवीं शती ई० में निर्मित स्वीकार किया गया है।[3]

---

१. तिवारी एम० एन० पी०, "ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया", ईस्ट ऐण्ड वेस्ट, खं० २३, अंक ३-४, पृ० ३४८-४९।

२. कृष्णदेव, पू० नि० लेख, पृ० ६०।

३. वही, पृ० ५८।

आदिनाथ मन्दिर के गर्भगृह के सामने कुछ अंश ईंटों का बना हुआ है, जो सम्भवतः जीर्णोद्धार के समय बना होगा। मन्दिर के सामने मण्डप की रचना नहीं है। इस मन्दिर में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की सं० १२१५ (११५८ ई०) की काले पाषाण की एक प्रतिमा स्थापित है। यह मन्दिर छोटा होते हुए भी स्थापत्य की अनेक विधाओं से युक्त है। यह मन्दिर एक ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित है। गर्भगृह की रचना सप्तरथ भूनिवेश पर की गयी है।[1]

पार्श्वनाथ मन्दिर के सामने आदिनाथ मंदिर की भित्ति पर भी एक के ऊपर एक मूर्तियों की तीन पंक्तियाँ हैं। ऊपर को पंक्ति में गन्धर्वों, किन्नरों एवं विद्याधरों की मूर्तियाँ हैं। मध्य की पंक्ति में चतुर्भुज गोमुख देवों की आठ स्थानक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। निचली पंक्ति में आठ दिक्पालों की मूर्तियाँ हैं। भित्ति की रथिकाओं में भी जैन देवियों की कई विशाल मूर्तियाँ स्थापित हैं। अधिष्ठान पर क्षेत्रपाल अम्बिका और चक्रेश्वरी की मूर्तियाँ हैं।[2]

शान्तिनाथ मन्दिर

खजुराहो के प्राचीन जैन मन्दिरों के भग्नावशेषों से शान्तिनाथ का विशाल मन्दिर बना है। इस मन्दिर में सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ की १२ फीट ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा स्थापित है। इस मूर्ति पर चमकदार पालिश है। मूर्ति को पीठिका पर सं० १०८५ (= १०२८ ई०) का एक लेख तथा हरिण का चिह्न है।

शान्तिनाथ मन्दिर में वर्तमान में बारह वेदियाँ हैं। इनमें से तीन प्राचीन मन्दिर ही थे, जिनका जंघा, गर्भगृह, मण्डप आदि अभी भी पूर्वस्थिति में हैं। ऊपर कुछ नवीन निर्माण करके उन्हें इस बड़े मन्दिर का अंग बना दिया गया है। यहाँ अनेक ऐसे शिल्पावशेष लगे हुये हैं, जो सारे खजुराहो में अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलते। मन्दिर के आँगन में बायीं ओर की दीवार में जैन युगल की एक मनोज्ञ मूर्ति देखी जा सकती है। मन्दिर के गर्भगृह में शान्तिनाथ की प्रतिमा के परिकर में दोनों ओर पार्श्वनाथ की खड़ी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।[3]

---

१. जैन, नीरज, पू० नि० ,पृ० ३५-४४।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १५३।

३. जैन, नीरज, पू० नि०, पृ० ४५-५०।

अध्याय द्वितीय

जैन देवकुल

भारतीय कला सदैव धर्म से सम्बन्धित और प्रभावित रही है। कला में सदा धार्मिक भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। संक्षेप में भारतीय कला धर्म की मूर्त्त अभिव्यक्ति रही है। प्रतिमाविज्ञान में धर्म से सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्तियों यथा—देवी-देवताओं, शलाकापुरुषों के स्वरूपगत विकास का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार प्रतिमाविज्ञान धार्मिक कला के व्याख्या पक्ष से सम्बन्धित है।[1] प्रतिमाविज्ञानपरक अध्ययन के मुख्यतः दो पक्ष होते हैं—शास्त्रपक्ष और कलापक्ष। शास्त्रपक्ष से तात्पर्य विभिन्न धार्मिक एवं प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों में सम्बन्धित धर्म के देवी-देवताओं की कल्पना एवं उनके लाक्षणिक स्वरूपों के अध्ययन से है। कलापक्ष में उन्हीं देवताओं की मूर्त्त अभिव्यक्ति का अध्ययन किया जाता है। दोनों के समन्वित अध्ययन से प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन को पूर्णता प्राप्त होती है। विभिन्न धर्म ग्रन्थों में वर्णित देवताओं एवं प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित उनके लाक्षणिक स्वरूपों के आधार पर ही काल एवं क्षेत्र की पृष्ठभूमि में कला के विभिन्न माध्यमों में देवी-देवताओं को मूर्त्त अभिव्यक्ति मिली। इस कारण किसी स्थल या काल विशेष की प्रतिमाओं के अध्ययन के पूर्व साहित्य के आधार पर सम्बन्धित देवकुल की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में हमने खजुराहो की जैन मूर्तियों का प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन किया है। खजुराहो की जैन मूर्तियों को समझने के लिये उनकी पारम्परिक पृष्ठभूमि का जानना आवश्यक है। साहित्य में वर्णित जैन देवकुल के स्वरूप से खजुराहो के कलाकार किस सीमा तक निर्देशित रहे हैं। इसकी जानकारी के लिये हम यहाँ संक्षेप में जैन देवकुल का परिचय प्रस्तुत करेंगे।

खजुराहो की जैन सामग्री लगभग ९५० ई० से ११५० ई० के मध्य की है। यह काल जैन देवकुल के विकास की पूर्णता का काल रहा है।

---

१. बनर्जी जे० एन०, "द डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकानोग्राफी," कलकत्ता, १९५६, पृ० १-२।

१० वीं शती ई० से १२ वीं शती ई० के मध्य जैन देवकुल के विभिन्न देवी देवताओं की सामान्य धारणा के साथ ही उनकी स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएँ भी निर्धारित हुईं। खजुराहो की जैन शिल्प-सामग्री के सन्दर्भ में १० वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य जैन देवकुल के स्वरूप का उल्लेख करना ही अधिक प्रासंगिक होगा। यह अध्ययन खजुराहो की जैन मूर्तियों से सम्बन्धित अगले अध्यायों के लिये पृष्ठभूमि का कार्य करेगा। प्रस्तुत अध्ययन से इस बात का निरूपण कर सकेंगे कि खजुराहो के कलाकार किस सीमा तक परम्परा के प्रति प्रतिबद्ध थे। इससे हम यह भी निर्धारित कर सकेंगे कि खजुराहो में जैन देवकुल के कौन-कौन से देवताओं को कलाकार ने मूर्त्त अभिव्यक्ति प्रदान की थी। इस अध्ययन से खजुराहो की जैन मूर्तियों का स्वरूप और महत्त्व अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि ५ वीं शती ई० तक जैन देवकुल का मूल स्वरूप निर्धारित हो गया था।[1] इन ग्रन्थों में जैन धर्म के प्रमुख आराध्य देव तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य शलाका-पुरुषों, यक्षों, विद्याओं एवं देवताओं के चार वर्गों (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक), सरस्वती, श्री लक्ष्मी, नैगमेषी और लोकधर्म में प्रचलित अनेक देवों के उल्लेख हैं।[2] छठीं से १२ वीं शती ई० के मध्य का काल जैन देवकुल के विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। छठीं से १० वीं शती ई० के मध्य का काल जैनधर्म पर तान्त्रिक प्रभाव का काल रहा है, जिसके फलस्वरूप जैन देवकुल में अनेक नवीन देवी-देवताओं की कल्पना की गयी।[3] प्रतिमा लाक्षणिक विकास की दृष्टि से १० वीं से १२ वों शती ई० के मध्य का काल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। इसी काल में जैन देवकुल के विभिन्न देवी-देवताओं के स्वतन्त्र लाक्षणिक स्वरूप श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं में निर्धारित हुए और तद्नुरूप उन्हें शिल्प में अभिव्यक्ति मिली। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में जैन देवकुल के सामान्य स्वरूप और उसमें होने वाले विकास में समरूपता

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ५९-७५।

२. लोकधर्म में प्रचलित देवताओं में मुख्य इन्द्र, रुद्र, स्कन्द, वासुदेव, वैश्रवण (या कुबेर) यक्ष, भूत, नाग, पिशाच, लोकपाल, गन्धर्व, पितर, वसु, आदित्य एवं नक्षत्र आदि।

३. स्ट० जै० आ०, पृ० १६।

दृष्टिगत होती है। केवल देवताओं के लाक्षणिक स्वरूपों के सन्दर्भ में ही दोनों परम्पराओं में विवरणों की भिन्नता देखी जा सकती है।[1]

अब हम संक्षेप में जैन देवकुल का परिचय प्रस्तुत करेंगे।

शलाकापुरुष :

जैनों ने सम्पूर्ण कालचक्र को अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में बाँटा है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल चल रहा है। जैन ग्रन्थों के अनुसार प्रस्तुत अवसर्पिणी में २४ तीर्थंकरों, १२ चक्रवर्त्तियों, ९ बलदेवों, ९ वासुदेवों और ९ प्रतिवासुदेवों सहित कुल ६३ शलाकापुरुष (उत्तम पुरुष) हुए हैं। ये ६३ शलाकापुरुष जैन देवकुल के महापुरुष या श्रेष्ठ पुरुष हैं।

(क) **तीर्थंकर**[2]—शलाकापुरुषों में २४ तीर्थंकर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। समवायांग सूत्र में वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरों की प्राचीनतम सूची प्राप्त होती है। ग्रन्थ में तीर्थंकरों को "देवाधिदेव" और इन्द्र आदि देवताओं द्वारा वन्दित होने के कारण श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ यह उल्लेख करना भी अपेक्षित है कि २४ तीर्थङ्करों की धारणा ही जैन धर्म एवं देवकुल की धुरी रही है। जैन देवकुल के अन्य सभी देवता तीर्थङ्करों से सम्बद्ध तथा उनके सहायक या शासन देवता हैं। समवायांग सूत्र की सूची में निम्नलिखित २४ तीर्थङ्करों का नामोल्लेख हुआ है—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान।[3]

समवायांग सूत्र के अतिरिक्त भगवतीसूत्र एवं कल्पसूत्र में भी २४ तीर्थङ्करों की सूचियाँ वर्णित हैं। कल्पसूत्र में ऋषभनाथ, नेमिनाथ,

१. विस्तार के लिये देखें—उ० भा० जै० प्र०, पृ० ७७।

२. तीर्थंकर को जिन भी कहा गया है। गम्भीर तपस्या एवं आत्ममनन द्वारा कर्मबन्धन से मुक्त होने के कारण इन्हें (विजेता) कहा गया है। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक तीर्थंकर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका के तीर्थों की स्थापना करते हैं इसी कारण उन्हें तीर्थंकर कहा गया है।

आ० हस्तीमल जैन, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, जयपुर, १९७१ पु० ४६-४७।

३. समवायांगसूत्र, १९८।

पार्श्वनाथ एवं महावीर के जीवन की कुछ घटनाओं के भी उल्लेख हैं। यू० पी० शाह के अनुसार ईसवी सन् के प्रारम्भ में भी सम्भवतः एक या दो शताब्दी पूर्व २४ तीर्थङ्करों की कल्पना की जा चुकी थी।[1] मथुरा की कुषाणकालीन जैन मूर्तियों में हमें ऋषभनाथ, सम्भवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की मूर्तियाँ मिली हैं।[2] २४ तीर्थङ्करों में केवल अन्तिम दो तीर्थङ्करों पार्श्वनाथ एवं महावीर को ही ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है।

परवर्ती जैन ग्रन्थों में भी २४ तीर्थङ्करों के नामों की सूची पूर्ववत् रही। केवल कुछ स्थानों पर ऋषभनाथ का आदिनाथ और नेमिनाथ का अरिष्टनेमि नामों से उल्लेख हुआ है। ९वें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ को जैन परम्परा में पुष्पदन्त भी कहा गया है। छठीं शताब्दी ई० के बाद श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्पराओं में अनेक चरित्र ग्रन्थों एवं पुराणों की रचना की गई, जिनमें विभिन्न तीर्थङ्करों के जीवन की घटनाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। इनमें कभी-कभी २४ तीर्थंकरों और कभी किसी तीर्थङ्कर विशेष के जीवन की घटनाओं के विस्तृत उल्लेख हैं। इन ग्रन्थों में तीर्थंकरों के पूर्वजन्मों, माता-पिता, गर्भ, जन्म, क्रीड़ा, शिक्षा-दीक्षा, प्रव्रज्या, तपस्या, उपसर्ग, कैवल्य, अतिशय, समवसरण, धर्मोपदेश, विहार और निर्वाण आदि का संक्षेप या विस्तार से उल्लेख हुआ है। २४ तीर्थंकरों के जीवनवृत्तों का उल्लेख करने वाले ग्रन्थों में त्रिशष्टि-शलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत १२वीं शताब्दी ई०) और महापुराण आदिपुराण एवं उत्तरपुराण ९वीं-१०वीं शती ई०) मुख्य हैं।[3]

लगभग ८वीं-९वीं शती ई० में २४ तीर्थंकरों के लिए अलग-अलग लांछन और ११वीं-१२वीं शती ई० में यक्ष-यक्षी निर्धारित हुए, जिनकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

(**ख**) **अन्य शलाकापुरुष**—समवायांगसूत्र में २४ तीर्थङ्करों के साथ ही १२ चक्रवर्तियों, ९ बलदेवों, ९ वासुदेवों और ९ प्रतिवासुदेवों के

---

१. शाह, यू० पी०, "बिगिनिंग्स ऑफ जैन आइकानोग्राफी", स० पु० प०, अं० ९, पृ० ४।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १००।

३. महापुराण का एक भाग आदिपुराण है जिसकी रचना जिनसेन ने ९वीं शती ई० में की और दूसरा भाग उत्तरपुराण है जिसकी रचना गुणभद्र ने १०वीं शती ई० में की।

उल्लेख प्राप्त होते हैं। समवायांगसूत्र में यद्यपि ६३ पुरुषों का वृत्तान्त दिया गया है किन्तु उत्तम पुरुषों की संख्या ६३ के स्थान पर केवल ५४ ही बतलाई गई है और इस प्रकार ९ प्रतिवासुदेवों को उत्तम पुरुषों में ही सम्मिलित किया गया है।[1] कल्पसूत्र में भी एक स्थान पर संख्या का संकेत दिये बिना तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेवों का उल्लेख किया गया है।[2]

६३ शलाकापुरुषों की प्रथम सूची विमलसूरिकृत पउमचरियं (लगभग तीसरी शती ई०) में प्राप्त होती है। २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त इसमें भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, सुभूम, पद्म, हरिषेण, जयसेन एवं ब्रह्मदत्त का १२ चक्रवर्ती; अचल, विजय, भद्र,[3] सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म (या राम), बलराम का ९ बलदेव; त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुष सिंह (पुरुषवर), पुण्डरीक, दत्त, नारायण, (या लक्ष्मण) और कृष्ण का ९ वासुदेव एवं अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रहलाद, रावण तथा जरासन्ध का ९ प्रति वासुदेव के रूप में उल्लेख हुआ है।[4]

पउमचरियं में ही सर्वप्रथम तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य शलाकापुरुषों का उल्लेख इस बात का संकेत देता है कि २४ तीर्थंकरों के बाद ही अन्य शलाकापुरुषों की सूची तैयार हुई। परवर्ती ग्रन्थों में शलाकापुरुषों की उपर्युक्त सूची ही स्वीकार की गई। जैन शिल्प में ६३ शलाकापुरुषों का निरूपण लोकप्रिय नहीं रहा है। तीर्थंकरों के अतिरिक्त केवल बलराम, कृष्ण तथा राम एवं चक्रवर्ती भरत की ही कुछ मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़, खजुराहो एवं विमलवसही, लूणवसही (आबू) से मिली हैं।[5] शलाकापुरुषों में कृष्ण एवं बलराम विशेष लोकप्रिय थे। कृष्ण का उल्लेख २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के चचेरे भाई के रूप में प्राप्त होता है। दिगम्बर ग्रन्थ हरिवंशपुराण (जिनसेनकृत ७८३ ई०) में कृष्ण एवं बलराम की कथा विस्तार से वर्णित है। पउमचरियं में राम और रावण की कथा का विस्तार से उल्लेख है।

---

१. समवायांग सूत्र, सूत्र २०७।

२. कल्पसूत्र, सूत्र १७।

३. दिगम्बर परम्परा में सुधर्म नाम मिलता है।

४. उ० भा० जै० प्र० पृ० ६४-६५।

५. वही, पृ० ६५।

यक्ष एवं यक्षी :

२४ तीर्थंकरों के बाद जेन देवकुल में सर्वाधिक महत्त्व यक्ष और यक्षियों को मिला। यक्ष और यक्षियाँ तीर्थंकरों के उपासक और शासन देवता होते हैं। जैन मान्यता के अनुसार कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक तीर्थंकर ने अपना पहला उपदेश इन्द्र द्वारा निर्मित समवसरण सभा में दिया था। समवसरण में ही इन्द्र ने प्रत्येक तीर्थंकर के साथ सेवक देवता के रूप में एक यक्ष और यक्षी युगल को नियुक्त किया था। हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्मों में यक्षों का उल्लेख प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है। भगवती सूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र, पिण्डनियुक्ति जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में अनेक यक्ष और यक्षियों के उल्लेख हैं। इनमें मणिभद्र और पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी सर्वाधिक लोकप्रिय थे। इन्हीं से लगभग छठीं शती ई० में जैन देवकुल के तीर्थंकरों से सम्बद्ध प्राचीनतम यक्ष-यक्षी कुबेर (या सर्वानुभूति) और अम्बिका विकसित हुए।[1] तीर्थंकर मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों का अंकन लगभग छठीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। २४ तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी युगलों की सूची ८वीं-९वीं शती ई० में निर्धारित हुई। इनका विस्तृत उल्लेख हम अगले अध्याय में करेंगे। इन यक्ष-यक्षियों के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के संदर्भ में हिन्दू एवं बौद्ध देवकुलों के देवताओं की लाक्षणिक विशेषताएँ भी स्वीकार की गई थीं। इनमें ऋषभनाथ के गोमुख और चक्रेश्वरी यक्ष-यक्षी और श्रेयांसनाथ के ईश्वर यक्ष और गौरी यक्षी प्रमुख हैं, जिनके निरूपण में स्पष्टतः शिव, वैष्णवी और गौरी का प्रभाव देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त चतुर्मुख, षड्मुख ब्रह्मा, कुमार, त्रिमुख, गरुड़, गन्धर्व, वरुण आदि यक्षों एवं तारा, महाकाली, ज्वालामालिनी, प्रज्ञप्ति, व्रजश्रृंखला, काली आदि यक्षियों के नामों एवं कुछ सीमा तक लाक्षणिक विशेषताओं के संदर्भ में हिन्दू एवं बौद्ध देवताओं का प्रभाव देखा जा सकता है।[2] २४ यक्ष-यक्षियों की प्रारम्भिक

---

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह यू० पी०, "यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर", ज० ओ० ई०, खं० ३, अं० १, पृ० ५४-७१। उ० भा० जै० प्र०, पृ० ३२०-२६।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ३२०-२१; भट्टाचार्य, विनायतोष, "द इंडियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी", कलकत्ता १९६८, पृ० ५६, २३५-४२, २९७।

सूचियाँ—तिलोयपण्णति (दिगम्बर) एवं प्रवचनसारोद्धार में प्राप्त होती हैं।

विद्या-देवियाँ :

२४ तीर्थंकरों एवं यक्ष-यक्षियों के पश्चात् विद्या-देवियों को ही जैन देवकुल में सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। विद्या-देवियों के सन्दर्भ में एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में इनके उल्लेख एवं निरूपण समान रूप से लोकप्रिय रहे हैं किन्तु मूर्तियों में इनकी लोकप्रियता केवल श्वेताम्बर स्थलों तक ही सीमित रही है।[1] ये विद्या-देवियाँ मूलतः तान्त्रिक देवियाँ हैं। इनके उल्लेख उत्तराध्ययनसूत्र, सूत्रकृताङ्गसूत्र, नामाधम्मकहाओ, स्थानाङ्गसूत्र, समवायांगसूत्र, पउमचरियम्, भगवतीसूत्र, हरिवंशपुराण एवं त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित जैसे प्रारम्भिक एवं परवर्ती जैन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। अनेक विद्या-देवियों में से १६ प्रमुख विद्या-देवियों की स्थायी सूची तैयार की गई है, जिन्हें महाविद्या कहा गया। १०वीं शती तक इनकी सूची पूर्णतः तैयार हो चुकी थो और उनकी लाक्षणिक विशेषताएँ भी लगभग इसी समय निर्धारित हुईं। महाविद्याओं के निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक जैन ग्रन्थ बप्पभट्टिसूरिकृत चतुर्विंशतिका (७४३-८३८ ई०) है।[2] लगभग ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० के मध्य के सभी श्वेताम्बर कला स्थलों पर इन १६ महाविद्याओं का स्वतन्त्र एवं सामूहिक अंकन अत्यधिक लोकप्रिय था।[3] श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में १६ महाविद्याओं की अंतिम रूप से प्राप्त होने वाली सूची निम्नवत् है—(१) रोहिणी, (२) प्रज्ञप्ति, (३) वज्रशृंखला, (४) वज्रांकुशा, (५) चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा, (श्वेताम्बर) एवं जाम्बुनदा (दिगम्बर), (६) नरदत्ता या पुरुषदत्ता, (७) काली या कालिका, (८) महाकाली, (९) गौरी, (१०) गान्धारी, (११) सर्वास्त्र महाज्वाला या ज्वाला, (१२) मानवी, (१३)

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ८१-८४।

२. ग्रन्थ में केवल पन्द्रह महाविद्याओं का ही लाक्षणिक विशेषताएँ निरूपित हैं। सर्वास्त्र महाज्वाला का उल्लेख नहीं है। उ० भा० जै० प्र०, पृ० ८३।

३. विस्तार के लिए देखें—वही, पृ० ८१-८४।

वैरोट्या (श्वेताम्बर) एवं वैरोटी (दिगम्बर), (१४) अच्छुप्ता (श्वेताम्बर) एवं अच्युता (दिगम्बर), (१५) मानसी एवं (१६) महामानसी।[1]

अन्य देवता :

जैन देवकुल के उपर्युक्त मुख्य देवताओं के अतिरिक्त लक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र, नैगमेषी, पंचपरमेष्ठि, तीर्थंकरों के माता-पिता, अष्टदिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, चौसठ योगिनी, शान्ति देवी, गणेश, ब्रह्मशक्ति एवं कपर्द्दि यक्षों सहित लोकधर्म में प्रचलित पिछले पृष्ठों में उल्लिखित देवताओं को भी साहित्य और साथ ही शिल्प में विशेष महत्त्व प्राप्त था। इनमें से कुछ प्रमुख देवताओं का हम यहाँ पर संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

लक्ष्मी—जैन देवकुल में लक्ष्मी को प्राचीन काल में ही सम्मिलित कर लिया गया था। लक्ष्मी के प्राचीनतम उल्लेख हमें तीर्थंकरों की माताओं द्वारा उनके जन्म के पूर्व देखे शुभ स्वप्नों के प्रसंग में प्राप्त होते हैं। कल्पसूत्र में चौदह शुभ स्वप्नों में से चौथे स्वप्न रूप में लक्ष्मी का उल्लेख है। शीर्षभाग में दो गजों द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी पद्मासीन और दोनों करों में पद्म संयुक्त हैं।[2] लक्ष्मी का स्वतन्त्र अंकन कभी भी विशेष लोकप्रिय नहीं था। मुख्यतः मांगलिक स्वप्नों के समूह में ही लक्ष्मी का अंकन हुआ है।[3]

सरस्वती—प्रारम्भ में सरस्वती का उल्लेख मेधा एवं बुद्धि के देवता या श्रुत देवता के रूप में हुआ है। इनकी प्राचीनतम प्रतिमा कुषाणकाल में बनी, जो सम्प्रति राजकीय संग्रहालय, लखनऊ (क्रमांक जी० २४) में है।[4] परवर्ती काल में जैन साहित्य एवं शिल्प में सरस्वती का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। हंस या मयूरवाहनी देवी के हाथों में सामान्यतः

---

१. शाह, यू० पी०, "आइकानोग्राफी ऑफ द सिक्सटीन जैन महाविद्याज", ज० इं० सो० ओ० अ०, खं० १५, पृ० ११४-७७; तिवारी, एम० एन० पी०, "द आइकोनोग्राफी ऑफ द सिक्सटीन महाविद्याज", सम्बोधि, सं० ४, नं० २-३, १९७३, पृ० २२-३०।

२. कल्पसूत्र, सूत्र ३७, उ० भा० जै० प्र०, पृ० ६७।

३. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ६७।

४. बाजपेयी, के० डी०, "जैन इमेज ऑफ सरस्वती इन द लखनऊ म्यूजियम", जैन एण्टिक्वेरी, सं० ११, अं० २, पृ० १-४।

Acc. 94567

पुस्तक एवं वीणा का प्रदर्शन स्पष्टतः हिन्दू प्रभाव का संकेत देता है। विभिन्न स्थलों की सरस्वती मूर्तियों में पल्लू (राजस्थान) से प्राप्त मध्ययुगीन सरस्वती प्रतिमाएँ शिल्प एवं प्रतिमा-लक्षण दोनों ही दृष्टियों से जैन सरस्वती की श्रेष्ठतम मूर्तियाँ हैं। ज्ञातव्य है कि अन्तिम तीर्थंकर महावीर की यक्षी सिद्धायिका के निरूपण में भी पुस्तक और वीणा के प्रदर्शन में सरस्वती का प्रभाव देखा जा सकता है।[1]

इन्द्र—इन्द्र को जैन परम्परा में तीर्थंकर का प्रधान सेवक स्वीकार किया गया है। प्रारम्भिक ग्रन्थों में विभिन्न इन्द्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थों में उल्लेख है कि तीर्थंकरों के जन्म, उनकी दीक्षा और कैवल्य-प्राप्ति के समय इन्द्र का पृथ्वी पर आगमन होता है। इन्द्र की स्वतन्त्र मूर्तियाँ नहीं मिली हैं। केवल तीर्थंकरों के जीवन-दृश्यों के चित्रण के रूप में विभिन्न घटनाओं के प्रसंग में इन्द्र को आमूर्तित किया गया है।[2]

नैगमेषी—अजमुख नैगमेषी को बालकों के जन्म से सम्बन्धित किया गया है और इसी सन्दर्भ में कल्पसूत्र तथा अन्तगडदसाओ जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में इनका उल्लेख हुआ है। ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में महावीर के भ्रूण को परिवर्तित करने का कार्य भी इन्द्र के आदेश पर नैगमेषी ने ही किया था। ज्ञातव्य है कि नैगमेषी इन्द्र के पैदल सेना का सेनापति है। महावीर के गर्भ-परिवर्तन के दृश्य का चित्रण करने वाले कुषाणकालीन एक फलक पर नैगमेषी का अङ्कन हुआ है। यह फलक सम्प्रति-राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में है। कुषाणकाल में इनका चित्रण विशेष लोकप्रिय था।[3] परवर्ती काल में इनका अङ्कन बहुत लोकप्रिय नहीं रहा।

बाहुबली—जैन देवकुल में १४ कुलकर या मनु, ९ नारद, ११ रुद्र एवं २४ कामदेवों के भी उल्लेख हैं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली का उल्लेख २४ कामदेवों में प्रथम कामदेव के रूप में हुआ है। अपने अग्रज भरत चक्रवर्ती के साथ हुये युद्ध और उसमें विजय-प्राप्ति के

१. तिवारी, एम० एन० पी०, "द आइकानोग्राफी ऑफ द जैन यक्षी सिद्धायिका", ज० ए० सो०, खं० १५, अं० १-४, १९७३, पृ० ९७-१०३।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ६८।

३. शाह, यू० पी०, हरिनैगमेषी, ज० इं० सो० ओ० आ०, खण्ड १९, १९५२-५३, पृ० १९-४१।

पश्चात् इनके मन में वैराग्य का भाव उत्पन्न हुआ और इन्होंने कठोर तपस्या द्वारा कैवल्य प्राप्त किया। तपस्या के समय इनके शरीर पर लता-वल्लरियाँ उग आईं और वृश्चिक, सर्प एवं छिपकली जैसे जन्तुओं ने इनके शरीर पर अपना निवास बना लिया, किन्तु बाहुबली इन सबसे अप्रभावित रहे और अविचल भाव से तपस्या में लीन रहे। दिगम्बर कला केन्द्रों पर इनकी मूर्तियों का निर्माण विशेष लोकप्रिय था।[1]

तीर्थंकरों के माता-पिता—दोनों सम्प्रदायों में तीर्थंकरों के माता-पिता को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है और उनकी गणना महान् आत्माओं के रूप में की गई है। समवायांगसूत्र के १९७वें सूत्र में तीर्थंकरों के माता-पिता की सूची वर्णित है, जो कालान्तर में सर्वथा अपरिवर्तित रही। मध्य युग में मूर्ति एवं चित्रों में तीर्थंकरों के माता और पिता का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। माताओं का चित्रण तुलनात्मक दृष्टि से कुछ अधिक लोकप्रिय था। गुजरात में कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों की छतों पर २४ तीर्थंकरों के माता-पिता का सामूहिक अङ्कन प्राप्त हुआ है।[1]

पंच-परमेष्ठी—जैन धर्म में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को तीर्थंकरों जितना ही महत्त्व प्रदान किया गया है। पंचपरमेष्ठियों के पूजन की परम्परा काफी प्राचीन रही है और परवर्ती युग में दोनों ही सम्प्रदायों में सिद्धचक्र या नव-देवताओं के रूप में इनके पूजन की धारणा विकसित हुई। १०वीं-११वीं शती ई० में साधु, आचार्य एवं उपाध्याय की विभिन्न स्थलों पर मूर्तियाँ निर्मित हुईं।[3] खजुराहो से भी इनकी मूर्तियाँ मिली हैं।

अष्ट-दिक्पाल—पउमचरियं के लोकपालों की धारणा का कालान्तर में आठ और दस दिक्पालों की धारणा के रूप में विकास हुआ।

१. शाह, यू० पी०, "बाहुबली-ए यूनीक् ब्रोन्ज इन द म्यूजियम", बु० प्रि० क्यू० वे० इं० खं० ४, १९५३-५४, पृ० ३२-३९; तिवारी, एम० एन० पी०, "ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज़ फ्राम नार्थ इण्डिया", ईस्ट एण्ड वेस्ट, ख० २३, अं० ३-४, १९७३, पृ० ३४७-३५३।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ८६; शाह, यू० पी०, "पेरेन्टस ऑफ तीर्थंकराज़", बु० प्रि० म्यू० वे० इं०, अं० ५, १९५५-५७, पृ० २४-३२।

३. शाह, यू० पी०, "बिगिंनग्स ऑफ जैन आइकानोग्राफी, सं० पु० प०, अं० ९, १९७२, पृ० ८-९।

८वीं से १२वीं शती ई० के मध्य सभी जैन मन्दिरों में हिन्दू मन्दिरों के समान ही अष्टदिक्पालों का अंकन हुआ है। जैन ग्रन्थों में १० दिक्पालों का उल्लेख हुआ है किन्तु १० दिक्पालों का अंकन केवल कुछ ही स्थलों पर मिलता है। ये १० दिक्पाल इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मान, आकाश एवं नागदेव (पाताल) हैं।[१] खजुराहो में दोनों ही सुरक्षित जैन मन्दिरों—पार्श्वनाथ और आदिनाथ के मण्डोवर पर चतुर्भुज अष्टदिक्पालों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की दीवारों पर भी अष्टदिक्पालों की चतुर्भुज मूर्तियों का एक समूह अंकित है।

नवग्रह—प्रारम्भिक ग्रन्थों के सूर्य और चन्द्र जैसे ज्योतिष्क देवों की धारणा से ही पूर्वमध्यकाल में नवग्रहों का विकास हुआ। ये नवग्रह सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु हैं। इनकी लाक्षणिक विशेषताएँ लगभग सभी मध्यकालीन ग्रन्थों में विवेचित है। जैन मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर इनका अंकन अत्यधिक लोकप्रिय था।[२] खजुराहो में जैन मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर नवग्रहों का पंक्तिबद्ध अंकन विशेष लोकप्रिय था, इन उदाहरणों में नवग्रहों की आकृतियाँ सामान्यतः द्विभुज हैं।

ब्रह्म शान्ति एवं कपर्द्दि यक्ष—इनका अंकन केवल श्वेताम्बर स्थलों पर ही लोकप्रिय था। ब्रह्म शान्ति यक्ष का जरामुकुट एवं छत्र-अक्षमाला और कमण्डलु जैसे प्रतोकों से युक्त होना, इस देवता पर हिन्दू धर्म के ब्रह्मा के प्रभाव को प्रकट करता है। कपर्द्दि यक्ष के निरूपण में शिव का प्रभाव प्रतिपादित किया गया है।[३]

गणेश—हिन्दू धर्म में बुद्धिदायक एवं विघ्ननाशक देवता के रूप में विशेष लोकप्रिय गणेश या गणपति को भी लगभग ११वीं-१२वीं शती ई० में जैन देवकुल में सम्मिलित कर लिया गया। अभिधान चिन्तामणि एवं आचार दिनकर में गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ वर्णित हैं। हिन्दू और जैन गणेश के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि जैन

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ८७-८८।

२. जैन आ०, पृ० ११७-२१; उ० भा० जै० प्र०, पृ० ८८।

३. शाह, यू० पी०, "ब्रह्मशक्ति एण्ड कपर्द्धि यक्षाज", जर्नल एम० एस० यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा, खं० ७, अं० १, मार्च १९५८, पृ० ६९-७३।

गणेश हिन्दू गणेश का अनुकरण मात्र है। गजानन गणेश का वाहन मूषक है तथा इनके हाथों में परशु, स्वदन्त एवं मोदक पात्र जैसे आयुध प्रदर्शित हैं। इनकी मूर्तियाँ मुख्यतः गुजरात और राजस्थान के श्वेताम्बर मन्दिरों से मिली हैं।[1]

●

---

१. विस्तार के लिये द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, "सम अनपब्लिस्ड जैन स्कल्पचर्स ऑफ गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया", जैन जर्नल, ख० ९, अं० ३, १९७५, पृ० ९०-९३।

अध्याय तृतीय

जिन-मूर्तियों का सामान्य विकास

जेन देवकुल में जिनों को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। उन्हें देवाधिदेव कहा गया है। जैन देवकुल के अन्य सभी देवता किसी न किसी रूप में सहायक देवता के रूप में जिनों से सम्बद्ध हैं। वर्तमान अवसर्पिणी युग में कुल २४ जिनों की कल्पना की गई है, जिनमें से अन्तिम दो जिनों, पार्श्वनाथ और महावीर को ऐतिहासिक पुरुष माना गया है। भारतीय कला मूलतः धार्मिक कला रही है। अतः जैन धर्म में २४ जिनों को प्राप्त होने वाली प्रमुखता को हम मूर्तियों में भी स्पष्टतः देख सकते हैं। जिनों को ही कला में सबसे पहले मूर्त अभिव्यक्ति मिली। जैन मूर्तियों के समूह में सर्वत्र जिनों की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। हम प्राक्कथन में ही संकेत कर चुके हैं कि खजुराहो की जैन मूर्तियों से सम्बन्धित अपने अध्ययन में वहाँ की जिन-मूर्तियों का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे। खजुराहो की जिन-मूर्तियों को पारम्परिक और क्षेत्र एवं कालगत विकास के सन्दर्भ में समझने के लिए यहाँ जिन-मूर्तियों के विकास की चर्चा आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में हम संक्षेप में साहित्य और कला के आधार पर जिन-मूर्तियों के विकास का निरूपण करेंगे।

मूर्तियों में जिनों की पहचान के मुख्यतः तीन आधार हैं—(१) लांछन, (२) अभिलेख, एवं (३) यक्ष-यक्षी।

प्रारम्भिक जिन-मूर्तियाँ :

(क) **मौर्य एवं शुङ्गकालीन मूर्तियाँ**—प्राचीनतम जिन-मूर्ति लगभग तीसरी शती ई० पू० की है। मौर्यकालीन यह जिन-मूर्ति पटना के समीप लोहानीपुर से मिली है और इस समय पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। मूर्ति की नग्नता और कायोत्सर्ग मुद्रा स्पष्टतः इसके जिन-मूर्ति होने की सूचना देती है।[1] लोहानीपुर से ही शुंग काल या कुछ बाद की एक अन्य जिन-मूर्ति भी मिली है। इसमें नीचे की ओर लटकती दोनों भुजाएँ भी

---

१. जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑफ मौर्य पीरियड", जर्नल बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खण्ड २३, ग्राम १, पृ० १३०-३२।

सुरक्षित हैं। लगभग दूसरी-पहली शती ई० पू० की पार्श्वनाथ की एक कांस्य मूर्ति प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित है। पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े हैं। उनके सिर के ऊपर पाँच सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है।[१] लगभग पहली शती ई० पू० की एक अन्य पार्श्वनाथ की मूर्ति चौसा (बिहार) से मिली है। यहाँ पार्श्वनाथ के मस्तक के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। यहाँ भी पार्श्वनाथ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं।[२]

उपर्युक्त मूर्तियाँ जिनों की प्रारम्भिकतम ज्ञात मूर्तियाँ हैं। इन जिन मूर्तियों में वक्ष स्थल के मध्य में श्रीवत्स चिह्न का अंकन नहीं प्राप्त होता है। ज्ञातव्य है कि कालान्तर में जिनों के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न का अंकन एक अभिन्न विशेषता के रूप में स्वीकृत हुआ। जिनों के वक्ष.स्थल में श्रीवत्स चिह्न का अंकन सर्वप्रथम पहली शती ई० पू० मथुरा में प्रारम्भ हुआ। मथुरा से प्राप्त पहली शती ई० पू० के आयागपटों पर उत्कीर्ण जिन मूर्तियों क वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न का स्पष्ट अंकन हुआ है। श्रीवत्स चिह्न जिन-मूर्तियों की पहचान का मुख्य आधार रहा है।[3] लगभग पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपट पर ही जिनों का सर्वप्रथम ध्यान-मुद्रा में अंकन हुआ है। आयागपट की मूर्ति में जिन को दोनों पैर मोड़ कर और दोनों हाथ गोद में रखे हुए ध्यान-मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। यह आयागपट इस समय राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्रमांक–जे० २५३) में सुरक्षित है। यहाँ उल्लेखनीय है कि जिन-मूर्तियाँ सदैव केवल दो ही मुद्राओं में बनीं। ये मुद्राएँ क्रमशः ध्यान-मुद्रा (या पद्मासन) और कायोत्सर्गमुद्रा (या खड्गासन) हैं। ध्यानमुद्रा में जिन योगी के समान दोनों पैर मोड़कर बैठे होते हैं और उनके दोनों हाथों की हथेलियाँ गोद में रखी होती हैं। कायोत्सर्ग-मुद्रा में जिन समभंग में सीधे खड़े होते हैं और उनकी दोनों भुजाएँ नीचे घुटनों तक इस प्रकार लटकी होती हैं कि उनका शरीर से स्पर्श न हो।[४]

---

१. स्ट० जै० आ०, पृ० ८-९।

२. प्रसाद, एच० के०, "जैन ब्रोन्जेज इन द पटना म्यूजियम" म० जै० वि० गो० जु० वा०, पृ० २७५-८०!

३. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ९५, १६७।

४. जै० आ०, पृ० १३८-४०।

(ख) **कुषाणकालीन मूर्तियाँ**—कुषाणकालीन जिन-मूर्तियों के उदाहरण मुख्य रूप में चौसा और मथुरा के कंकाली टिला से मिले हैं। कुषाणकालीन जिन-मूर्तियों में ही सर्वप्रथम आदिनाथ की मूर्तियों का अंकन प्रारम्भ हुआ। आदिनाथ की मूर्तियों में दोनों कन्धों पर लटकती हुई जटाएँ प्रदर्शित हैं। ज्ञातव्य है कि चौसा, प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई एवं मथुरा के आयागपट की, ऊपर वर्णित शुंगकालीन मूर्तियों में केवल पाँच या सात सर्पफणों के छत्रों से युक्त पार्श्वनाथ का ही अंकन हुआ है। इस प्रकार शिल्प में पार्श्वनाथ के बाद ही आदिनाथ की विशेषताएँ प्रदर्शित हुईं।[1]

चौसा के कुषाणकालीन मूर्तियों में केवल आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ की ही पहचान सम्भव है। इन उदाहरणों में जिन निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं।[2] मथुरा से लगभग १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की प्रचुर जैन-मूर्तियाँ मिली हैं।[3] कुषाणकाल में जिनों की पर्याप्त मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। इनमें जिनों को ध्यान और कायोत्सर्ग दोनों ही मुद्राओं में निरूपित किया गया है। आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ के अतिरिक्त यहाँ से सम्भवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ और महावीर की मूर्तियाँ मिली हैं। इस प्रकार कुषाणकाल में जिनों की केवल छः ही मूर्तियाँ बनीं। नेमिनाथ की मूर्तियों में दोनों ओर बलराम और कृष्ण का अंकन किया गया है। स्मरणीय है कि जैन परम्परा में नेमिनाथ को कृष्ण का चचेरा भाई बतलाया गया है। सम्भवनाथ, मुनिसुव्रत और महावीर की मूर्तियों में लांछन नहीं प्रदर्शित हैं। केवल पीठिकालेखों में जिनों के नामोल्लेख के आधार पर ही मूर्तियों की पहचान सम्भव हो सकी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुषाणकाल तक केवल आदिनाथ, नेमिनाथ और महावीर की ही कुछ लाक्षणिक विशेषताएँ मूर्तियों में प्रदर्शित हुईं।

कुषाणकाल में ही सर्वप्रथम जिन-मूर्तियों में प्रतिहार्यों, धर्मचक्र, मांगलिक चिह्नों एवं धर्मचक्र के दोनों ओर उपासकों का अंकन प्रारम्भ हुआ। मथुरा की कुषाणकालीन जिन-मूर्तियों में आठ प्रतिहार्यों में से केवल सात ही प्रदर्शित हैं। ये प्रतिहार्य सिंहासन, प्रभामण्डल, चँवरधारी सेवक,

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १६८।

२. प्रसाद, एच० के०, प० नि०, पृ० २८०-८२।

३. स्ट० जै० आ०, पृ० ९।

उड़ने वाले मालाधर, छत्र, चैत्य, वृक्ष एवं दिव्य ध्वनि हैं। जैन परम्परा में वर्णित सभी आठ प्रतिहार्यों का अंकन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ।[1]

स्वतन्त्र जिन-मूर्तियों के अतिरिक्त कुषाणकाल में जिन-चौमुखी या सर्वतोभद्रिका जिन-मूर्तियों का भी अंकन हुआ। इन मूर्तियों में एक ही शिलाखण्ड के चारों ओर चार जिन-प्रतिमायें उत्कीर्ण होती हैं। कुषाण-कालीन सभी उदाहरणों में जिन कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं। लटकती हुई जटाओं और सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर चार में से केवल दो ही जिनों की पहचान क्रमशः आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ से की जा सकती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कुषाणकाल में प्रारम्भ होने वाली जिन-चौमुखी मूर्तियों के अंकन की परम्परा आगे की शताब्दियों में भी लोकप्रिय रही। लगभग आठवीं से बारहवीं शताब्दी ई० के मध्य की चौमुखी मूर्तियों में कभी-कभी एक ही जिन की चार मूर्तियाँ अंकित हैं।[2]

कुषाणकाल में आदिनाथ और महावीर के जीवन के कुछ दृश्य भी अंकित हुए। इनमें आदिनाथ के वैराग्य उत्पन्न होने एवं महावीर के गर्भ-परिवर्तन के दृश्य प्रमुख हैं।[3]

(ग) **गुप्तकालीन मूर्तियाँ**—जिन-मूर्तयों के विकास की दृष्टि से गुप्त-काल विशेष महत्त्वपूर्ण था। जिनों की लाक्षणिक विशेषतायें सर्वप्रथम गुप्तकाल में ही निरूपित हुईं। जिनों की मूर्तियों में पारम्परिक लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रतिहार्यों का चित्रण गुप्तकाल में ही प्रारम्भ हुआ।[4] गुप्तकालीन ग्रन्थ **बृहत्संहिता** में जिन-मूर्ति की चर्चा है। ग्रन्थ के अनुसार श्रीवत्स चिह्न से युक्त जिन-मूर्ति निर्वस्त्र, आजानुलम्बबाहु और तरुण रूप होनी चाहिये।[5] एक अन्य ग्रन्थ मानसार में भी नग्नता, श्रीवत्स चिन्ह, ध्यानमुद्रा एवं लम्बी और लटकती भुजाओं को जिन-मूर्ति का प्रमुख लक्षण बताया गया है। जिन-मूर्तियाँ पूरी तरह से अलंकरण-विहीन

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ९८–१०० ।
२. वही, पृ० ९८–१००, १६९, ३०५-३०६ ।
३. वही, पृ० १००-१०१ ।
४. वही, पृ० १६९-७० ।
५. आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्यो ऽर्हतां देवः ॥
—बृहत्संहिता, ५८-४५ ।

हों।[1] अन्य परवर्ती ग्रंथों में भी इन्हीं विशेषताओं की कुछ अधिक विस्तार से चर्चा की गई है।[2]

यहाँ उल्लेखनीय है कि जिनों की मूर्तियाँ हमेशा मानव रूप में ही बनीं। इसी कारण उनके साथ कभी कोई असामान्य या मानवेतर विशेषतायें नहीं प्रदर्शित की गईं। सामान्य मनुष्य के समान ही उन्हें द्विभुज और दो नेत्रों वाला प्रदर्शित किया गया। मानव रूप में जिनों की मूर्तियों का निर्माण एक निश्चित भावना का सूचक है। जैनों की सामान्य धार्मिक भावना के अनुसार मनुष्य स्वयं ही अपनी सतत् चेष्टाओं द्वारा देवपद प्राप्त कर सकता है। जिनों की मानवरूप मूर्तियाँ इसी भावना की स्थूल अभिव्यक्ति हैं।

गुप्तकाल में ही सर्वप्रथम श्वेताम्बर जिन-मूर्तियों का उत्कीर्ण होना प्रारंभ हुआ। श्वेताम्बर परम्परा की जिन-मूर्तियों में जिनों को धोती से युक्त

---

१. द्विभुजं च द्विनेत्रं च मुण्डतारं च शीर्षकम्।
ऋजुस्थानकसंयुक्तं तथा चासनमेव च।
समाङ्घ्रि ऋज्वाकारं स्याल्लम्बहस्तद्वयं तथा।
आसनं च द्विपादो च पद्मासनं तु संयुतम्।
ऋजुके च ऋजुभावं योगं तत्परमात्मकम्।
निराभरणमर्वाङ्गं निर्वस्त्राङ्गं मनोहरम्।
सर्ववक्षःस्थले हेमवर्णं श्रीवत्सलांछनम् ॥
—मानसार, ५५, ४०–४६।

१. अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
ऋज्वायुत सुसंस्थानं तरूणाङ्गं दिगम्बरम् ॥
श्रीवृक्षभूषितोरस्कं जानुप्राप्तकराग्रजम्।
निजाङ्गुलप्रमाणेन साष्टाङ्गुलशतायुतम् ॥
कक्षादिरोमहीनाङ्गं श्मश्रु लेखाविवर्जितम् ॥
—प्रतिष्ठासारसंग्रह, ४, १, २, ४।

छत्रत्रयं जिनस्यैव रथिकाभिस्त्रिभिर्यता (-र्युतम्) ॥
अशोकद्रुमपत्रैश्च देवदुन्दभिवादकैः।
सिंहासनम सुराद्योगजसिंहा (सिंहासनेनासुराद्यैर्गजसिंहैः) विभषिताः ॥
मध्ये च कर्मचक्रं च तत्पार्श्वयोश्च यक्षिणी।
द्वितालविस्तराः कार्या बहिः परिकरस्य तु ॥
—रूपमण्डन, ६, ३३–३५।

दिखाने की परम्परा रही है। श्वेताम्बर परम्परा की प्राचीनतम जिन मूर्तियाँ गुजरात में अकोटा से मिली हैं। लांछनों से युक्त प्राचीनतम जिन-मूर्तियाँ राजगिर (बिहार) और वाराणसी से मिली हैं। राजगिर की मूर्ति लगभग चौथी शती ई० की है। ध्यानमुद्रा में विराजमान जिन की पीठिका पर दो शंख उत्कीर्ण हैं। जैन परम्परा के अनुसार शंख नेमिनाथ का लांछन है। वाराणसी से प्राप्त मूर्ति इस समय भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक १६१) में संग्रहीत है। इस मूर्ति में पीठिका मध्य के धर्मचक्र, दोनों ओर सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। सिंह अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर का लांछन है।[1] इस प्रकार गुप्तकाल में केवल नेमिनाथ एवं महावीर के क्रमशः शंख एवं सिंह लांछन निर्धारित हुये। आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ के साथ पूर्ववत् जटाओं और सात सर्पफणों का प्रदर्शन होता रहा।

यक्ष-यक्षी से युक्त पहली जिन-मूर्ति लगभग छठीं शती ई० की है। यह मूर्ति श्वेताम्बर स्थल अकोटा से मिली है। आदिनाथ की इस मूर्ति में यक्ष-यक्षी के रूप में द्विभुज सर्वानुभूति (कुबेर) एवं अम्बिका की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।[2] गुप्तकाल में अष्ट-प्रतिहार्यों का नियमित अंकन होने लगा था। ये अष्ट-प्रतिहार्य निम्नलिखित हैं—अशोक वृक्ष, चाँवर (चाँवरधर सेवक), देवपुष्पवृष्टि (मालाधर गन्धर्व, दिव्य ध्वनि, सिंहासन, त्रिछत्र, देव दुन्दुभि एवं प्रभामण्डल। गुप्तकाल में ही मुख्य जिन-आकृति के साथ सिंहासन या परिकर में छोटी-छोटी जिन-मूर्तियों के अंकन की परम्परा भी प्रारम्भ हुई।[3]

---

१. विस्तार के लिए देखें, चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स एट राजगिर", आ० स० इं० ऐ० रि०, १९२५-२६, पृ० १२५-२६।
शाह, यू० पी० "ए फ्यू जैन इमेजेज इन द भारत कला भवन, वाराणसी" छवि, पृ० २३४।
तिवारी, एम० एन० पी०, "एन अनपब्लिस्ड जिन इमेज इन द भारत कला भवन, वाराणसी", विश्वेश्वरानन्द इन्डोलाजिकल जर्नल, खण्ड १३, अंक १-२, पृ० ३७३–७५।

२. शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९, "इन्ट्रोडक्शन ऑफ शासनदेवताज़ इन जैन वरशिप" 'प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑफ आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स २०वाँ अधिवेशन, पृ० १४१–५२।

३, विस्तार के लिये देखें, उ० भा० जै० प्र०, पृ० १७०–७२।

परवर्ती जिन-मूर्तियाँ (लगभग ७वीं से १२वीं शती ई० तक)—लगभग सातवीं-आठवीं शती ई० से जिन-मूर्तियों में यक्षों एवं यक्षियों का नियमित अंकन प्रारम्भ हो गया। लगभग नवीं शती ई० तक सभी जिनों के साथ यक्ष और यक्षी के रूप में कुबेर और अम्बिका की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। किन्तु नवीं शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों में आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हैं। केवल गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन-मूर्तियाँ इसका अपवाद हैं, जहाँ सभी जिनों के साथ सामान्यतः कुबेर और अम्बिका ही प्रदर्शित हैं। परम्परा के अनुसार जिन-मूर्तियों में यक्ष को दायीं ओर तथा यक्षी को बायीं ओर उत्कीर्ण किया जाना चाहिये।[1]

लगभग आठवी-नवीं शती ई० तक जैन ग्रन्थों में सभी २४ जिनों के लाँछनों का निर्धारण हुआ और तदनुरूप मूर्तियों में उनका अंकन हुआ। मूर्तियों में जिन की पहचान का मुख्य आधार उनका लांछन ही रहा है। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलों को छोड़कर सर्वत्र जिन मूर्तियों में लांछनों का नियमित अंकन हुआ है। गुजरात एवं राजस्थान में मूर्तियों के पीठिकालेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही अधिक लोकप्रिय रही है। आदिनाथ, सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ के साथ क्रमशः लटकती जटाओं एवं पाँच और सात सर्पफणों का अंकन सर्वत्र प्राप्त होता है।[2]

२४ जिनों के यक्ष-यक्षी युगलों की सूची लगभग आठवीं-नवीं शती ई० में तैयार हुई। प्राचीनतम सूचियाँ क्रमशः श्वेताम्बर ग्रन्थ **कहावली** तथा दिगम्बर ग्रन्थ **तिलोयपण्णत्ति** में वर्णित हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषतायें लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। यक्ष और यक्षियों के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित प्रमुख श्वेताम्बर ग्रन्थ **निर्वाणकलिका** और **त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित** तथा दिगम्बर ग्रन्थ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** और **प्रतिष्ठासारोद्धार** हैं।[3]

---

१. विस्तार के लिए देखें उ० भा० जै० प्र०, पृ० १७०-१७१।
२. वही, पृ० १७०-१७४।
३. वही, पृ० २२४-२५।

जिन मूर्तियों में आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। सभी क्षेत्रों में इन्हीं की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियाँ बनीं। इनमें भी आदिनाथ और पार्श्वनाथ अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय थे। इन्हीं चार प्रमुख जिनों से सम्बन्धित यक्षियों को साहित्य और शिल्प दोनों में सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। ये यक्षियाँ क्रमशः चक्रेश्वरी, अंबिका, पद्मावती और सिद्धायिका हैं। **रूपमण्डन** में २४ जिनों की सूची वर्णित है, उसमें सभी जिनों को पूज्य बतलाया गया है। पर ग्रन्थ में ही उपर्युक्त चार तीर्थंकरों एवं उनसे सम्बन्धित यक्षियों को विशेष रूप से पूज्य बतलाया गया है।[1]

संक्षेप में पूर्ण विकसित जिन-मूर्तियाँ निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त होती थीं। श्रीवत्स से युक्त जिन-मूर्तियाँ कायोत्सर्ग या ध्यानमुद्रा में निरूपित होती हैं। शीर्षभाग में उष्णीष से युक्त जिन-आकृतियाँ सामान्यतः पद्मासन पर बैठी या खड़ी होती हैं। आसन पर पुष्प या कीर्तिमुख आदि का अलंकार होता है। आसन के नीचे दोनों छोरों पर दो सिंह उत्कीर्ण होते हैं, जो सिंहासन के सूचक हैं। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र उत्कीर्ण होता है। धर्मचक्र के समीप या आसन पर कहीं जिनों के पारम्परिक लांछन अंकित होते हैं। सिंहासन के दायें और बायें छोरों पर क्रमशः यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ होती हैं, जो सामान्यतः द्विभुज या चतुर्भुज और ललितमुद्रा में होती हैं। मुख्य देवता के दोनों ओर दो चंवरधारी सेवक और दो या अधिक उपासक अंकित होते हैं। मुख्य जिन आकृति के पृष्ठभाग में अलंकृत प्रभामंडल होता है। सिर के ऊपर त्रिछत्र और दुन्दुभि-वादक एवं अशोकवृक्ष की पत्तियाँ उत्कीर्ण होती हैं। मूर्ति के ऊपरी भाग में दो गज एवं उड़ने वाले मालाधर तथा वाद्यवादन करती आकृतियाँ भी अंकित होती हैं।[2]

---

१. जिनस्य मूर्तयोऽनन्ताः पूजिताः सर्वसौख्यदा।
चतस्त्रोऽतिशयैर्युक्तास्तासां पूज्या विशेषत ॥
श्रीआदिनाथो नेमिश्च पार्श्वो वीर चतुर्थकः।
चक्रेश्वर्यम्बिका पद्मावतीसिद्धायकेति च ॥
कैलासं सोमशरणं सिद्धवर्ति सदाशिवम्।
सिंहासनं धर्मचक्रमुपरीन्द्रातपत्रकम् ॥

—रूपमण्डन, ६/२५-२७

२. विस्तार के लिये देखें, उ० भा० जै० प्र०, पृ० १७६—७७।

चतुर्थ अध्याय

खजुराहो की जिन-मूर्तियाँ

खजुराहों की जैन-मूर्तियों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि जैन देवसमूह में वहाँ जिन-मूर्तियों का उत्कोर्णन ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। खजुराही से दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ४०० से अधिक जैन-मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें से १५० से अधिक मूर्तियाँ जिन-मूर्तियाँ हैं।[1] खजुराहो में स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही जिनों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी और चौमुखी (या सर्वतोभद्रिका प्रतिमा) मूर्तियाँ भी हैं। कुछ उदाहरणों में प्रवेशद्वारों एवं उत्तरंगों पर भी जिनों की कई छोटी-छोटी आकृतियों का अंकन देखा जा सकता है। खजुराहो को जिन-मूर्तियाँ प्रतिमा लाक्षणिक दृष्टि से पूर्ण विकसित जिन मूर्तियाँ हैं। जिन-मूर्तियाँ लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों, अष्टप्रतिहार्यों एवं अन्य पारम्परिक विशेषताओं से युक्त हैं। खजुराहो की जिन-मूर्तियाँ दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। खड़ी मूर्तियाँ निर्वस्त्र हैं। कभी-कभी ऐसी बैठी मूर्तियों में भी जहाँ गोद में स्थित दोनों हाथ खण्डित हैं, मूर्ति की नग्नता स्पष्ट देखी जा सकती है।[2]

इस अध्याय में हम संक्षेप में खजुराहो की जिन-मूर्तियों का अध्ययन करेंगे। प्रारम्भ में हम खजुराहो की जिन-मूर्तियों की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे और उसके पश्चात् अलग-अलग जिनों की स्वतन्त्र मूर्तियों का अध्ययन करेंगे। अन्त में द्वितीर्थी, त्रितीर्थी और चौमुखी जिन मूर्तियों की भी संक्षेप में चर्चा की जायेगी।

जिन-मूर्तियों की सामान्य विशेषताएँ :

खजुराहो की जिन-मूर्तियाँ प्रतिमालक्षण की दृष्टि से पूर्ण विकसित मूर्तियाँ हैं। इसी कारण दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की इन मूर्तियों में विकास की अलग-अलग अवस्थाएँ नहीं प्राप्त होती हैं।

---

१. तिवारी, एम० एन० पी०, "जिन इमेजेज इन द आर्कियोलाजिकल म्यूजियम खजुराहो", महावीर एण्ड हिज टीचिंगस् स० ए० एन० उपाध्ये आदि, बम्बई १९६७, पृ० ४०९।

२. वही, पृ० ४०९।

खजुराहो की प्राचीनतम जिन-मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मन्दिर (९५०-७० ई०) के गर्भगृह एवं अन्य भागों पर उत्कीर्ण हैं। जिनों की अधिकांश मूर्तियाँ स्थानीय जैन धर्मशाला के परकोटे में स्थित ३० से अधिक छोटे-छोटे मन्दिरों में सुरक्षित हैं। शेष जिन-मूर्तियाँ तीन स्थानीय संग्रहालयों— आदिनाथ मन्दिर के समीप के खुले संग्रहालय, पुरातात्विक संग्रहालय एवं जार्डिन संग्रहालय में सुरक्षित हैं। विभिन्न मन्दिरों एवं स्वतन्त्र उतरंगों की आकृतियों को सम्मिलित करने पर जिन-मूर्तियों की संख्या ४०० से भी अधिक होगी। किन्तु हमने अपने अध्ययन में केवल स्वतन्त्र एवं प्रतिमालक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मूर्तियों को ही सम्मिलित किया है। ऐसी मूर्तियों की संख्या १५० से अधिक है।

सभी जिन-मूर्तियों के वक्षःस्थल श्रीवत्स-चिह्न से युक्त हैं। जिन-मूर्तियाँ केवल दो पारम्परिक मुद्राओं, कायोत्सर्ग और ध्यान में ही निरूपित हैं। खजुराहो में ध्यानमुद्रा में आसीन जिन-मूर्तियाँ तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हैं।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि खजुराहो की अधिकांश जिन-मूर्तियाँ ग्यारहवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य बनीं। खजुराहो की जिन-मूर्तियाँ मथुरा एवं देवगढ़ जैसे समकालीन दिगम्बर कला केन्द्रों की जिन-मूर्तियों के समकक्ष ठहरती हैं।

खजुराहो की जिन-मूर्तियों में सिंहासन या धर्मचक्र के समीप ही जिनों के लांछन के प्रदर्शन की परम्परा रही है। जिन-मूर्तियों के साथ अष्टप्रतिहार्यों का प्रदर्शन नियमित रूप से हुआ है। ये अष्टप्रतिहार्य, अशोक वृक्ष, चँवरधर सेवक, सिंहासन, प्रभामंडल, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्य ध्वनि, त्रिछत्र और दिव्य संगीत हैं। जिनों के साथ यक्ष-यक्षी युगलों का भी अंकन हुआ है। केवल कुछ ही उदाहरणों में यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं। यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ सामान्यतः द्विभुज या चतुर्भुज हैं और ललितमुद्रा में आसीन हैं। इन्हें जिन-मूर्ति के सिंहासन के दायें और बायें छोरों पर निरूपित किया गया है जहाँ यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ नहीं अंकित हैं; ऐसे उदाहरणों में सिंहासन के छोरों पर सामान्यतः दो छोटी जिन-मूर्तियाँ अंकित हैं।

खजुराहो में २४ में से केवल १३ जिनों की ही मूर्तियाँ मिली हैं। ये जिन-मूर्तियाँ आदिनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, शान्तिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की

---

१. तिवारी, एम० एन० पी० "जिन इमेजेज इन द आर्कियोलाजिकल म्यूजियम खजुराहो", महावीर एण्ड हिज टीचिंगस् स० ए० एन० उपाध्ये आदि, बम्बई, १९६७, पृ० ४०९-१०।

हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ प्रथम जिन आदिनाथ की हैं, जिनकी संख्या ५० से भी अधिक है। मूर्तियों की संख्या खजुराहो में आदिनाथ की सर्वाधिक लोकप्रियता को प्रतिपादित करती हैं। मूर्तियों के अतिरिक्त खजुराहो के तीनों जैन मन्दिर-पार्श्वनाथ, घण्टाई और आदिनाथ भी आदिनाथ को ही समर्पित थे। आदिनाथ के बाद पार्श्वनाथ और महावीर की सर्वाधिक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। अन्य सभी जिनों की मूर्तियाँ संख्या की दृष्टि से नगण्य हैं।[1]

अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत, पार्श्वनाथ एवं महावीर की मूर्तियों में कभी-कभी यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ नहीं उत्कीर्ण हैं। खजुराहो की जिन-मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सभी जिनों के यक्ष और यक्षियों को मूर्तियों में नहीं बनाया गया है। जिनों की मूर्तियों में केवल आदिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के ही यक्ष और यक्षियों का पारम्परिक स्वरूपों में अंकन हुआ है। महावीर के साथ प्रदर्शित यक्ष और यक्षी युगल पारम्परिक न होकर स्वतन्त्र लक्षणों वाले हैं।[2]

मूर्तियों में जिनों की आकृतियाँ अलंकृत आसनों पर कायोत्सर्ग या ध्यानमुद्रा में निरूपित हैं। अलंकृत आसन के नीचे सिंहासन बना है, जिसके दोनों ओर भयंकर आकृति वाले दो सिंह उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र है और उसके दोनों छोरों पर दो अर्धस्तम्भ उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के नीचे एक अलंकृत आसन प्रदर्शित है। अलंकृत आसन या धर्मचक्र के समीप ही जिनों के पारम्परिक लांछन उत्कीर्ण हैं। जिनों के दोनों पार्श्वों में मुकुट, हार, बाजूबन्द आदि अलंकरणों से युक्त चंवर-धर सेवकों की दो आकृतियाँ बनी हैं। ये आकृतियाँ स्थानक मुद्रा में हैं। इन सेवकों की एक भुजा में चंवर प्रदर्शित है तथा दूसरी भुजा कमर पर स्थित है। कभी-कभी दूसरी भुजा में पद्म भी प्रदर्शित है। जिन-आकृति के कन्धों के ऊपर दोनों ओर गजों और मालाधर गन्धर्वों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। गजाकृतियों पर एक या दो सवार बैठे हैं, जिनके हाथों में सामान्यतः जलपात्र प्रदर्शित हैं। सभी उदाहरणों में जिनों के सिर के पीछे ज्यामितीय चिह्न, पुष्प एवं अन्य अलंकरणों से युक्त कान्ति-मण्डल प्रदर्शित है।

---

१. तिवारी, एम० एन० पी० "जिन इमेजेज इन द आर्कियोलाजिकल म्यूजियम खजुराहो", महावीर एण्ड हिज टीचिंगस् स० ए० एन० उपाध्याये आदि, बम्बई, १९६७, पृ० ४१०-११।

२. वही, पृ० ४११।

जिनों की केश-रचना छोटे-छोटे गुच्छों के रूप में बनी है, जिसके ऊपर उष्णीष प्रदर्शित है। आदिनाथ के साथ जटाओं, सुपार्श्वनाथ के साथ पाँच सर्पफणों के छत्र एवं पार्श्वनाथ के साथ सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। जिनों के मस्तक के ऊपर त्रिछत्र और नगाड़ा बजाती आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, ऊपरी भाग में ही कुछ अन्य मालाधर गन्धर्वों एवं वाद्यवादन करती आकृतियों का भी अंकन हुआ है। कभी-कभी मूर्तियों के सिंहासनों एवं परिकर में नवग्रहों की द्विभुज आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। इनमें नवग्रह सामान्यतः द्विभुज और ललितमुद्रा में आसीन हैं। मुख्य जिन-मूर्ति के अतिरिक्त परिकर में छोटी-छोटी जिन-मूर्तियाँ भी अंकित की गई हैं। ऐसे उदाहरणों में परिकर में कभी-कभी २३ छोटी जिन-मूर्तियाँ अंकित हैं, जो मुख्य जिन-आकृतियों के साथ मिल कर २४ जिन-मूर्तियों का अंकन करती हैं। ऐसी मूर्तियों को जिन-चौबीसी कहा गया है। जिन मूर्तियों में दोनों ओर क्रमशः एक के ऊपर एक गज, व्याल, मकर और योद्धा का भी अंकन हुआ है। खजुराहो की अधिकांश जिन-मूर्तियाँ पीले रंग के बलुए पत्थर पर उत्कीर्ण हैं। केवल कुछ उदाहरणों में लाल व भूरे रंग के पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

स्वतन्त्र जिन-मूर्तियाँ :

अब हम खजुराहो की स्वतन्त्र जिन-मूर्तियों का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन में हम प्रारम्भ में सम्बन्धित जिन की समस्त मूर्तियों की सामान्य लाक्षणिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे और उसके बाद कुछ विशिष्ट मूर्तियों का विवरण प्रस्तुत करेंगे। अपने इस अध्ययन में हम लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं परिकर में उत्कीर्ण विभिन्न आकृतियों का ही विस्तार से उल्लेख करेंगे। स्वतन्त्र जिन-मूर्तियों की चर्चा से पूर्व प्रत्येक जिन की परम्परागत लाक्षणिक विशेषताओं की भी चर्चा होगी। अन्त में द्वितीर्थी, त्रितीर्थी और चौमुखी मूर्तियों की चर्चा की जायेगी।

१. आदिनाथ (ऋषभनाथ)

आदिनाथ को ऋषभनाथ भी कहते हैं। इनका लांछन वृषभ है। आदिनाथ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा) हैं। दिगम्बर परम्परा में गोमुख यक्ष के शीर्ष भाग में धर्मचक्र के अंकन का उल्लेख है। गाय के मुख वाले गोमुख यक्ष का वाहन वृषभ है। चतुर्भुज यक्ष के हाथों में परशु, हल, अक्षमाला और वरदमुद्रा प्रदर्शित

हैं।[1] दिगम्बर परम्परा में चक्रेश्वरी को चार और बारह भुजाओं वाला बताया गया है। देवी का वाहन गरुड़ है। चतुर्भुज देवी के दो हाथों में चक्र और अन्य दो में फल और वरद्मुद्रा प्रदर्शित है। बारह भुजाओं वाली यक्षी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और शेष दो में फल एवं वरद्मुद्रा प्रदर्शित है।[2]

खजुराहो में आदिनाथ की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों की संख्या ५० से अधिक है। दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की इन मूर्तियों में आदिनाथ के साथ वृषभ लांछन और कन्धों पर लटकती जटाओं का नियमित प्रदर्शन हुआ है। अधिकांश उदाहरणों में आदिनाथ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। ५ मूर्तियों में आदिनाथ की केश-रचना जटा के रूप में पीछे की ओर संवारी हुई है। कुछ उदाहरणों में आदिनाथ के दोनों पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग जिन-मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। इन जिन-मूर्तियों के मस्तकों पर सामान्यतः ५ और ७ सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं, जो उनके सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ होने के सूचक हैं। खजुराहो के जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (क्रमांक १६५१) में आदिनाथ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख और चक्रेश्वरी के साथ ही लक्ष्मी एवं जैन यक्षी अम्बिका की भी आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। ये आकृतियाँ आदिनाथ की विशेष प्रतिष्ठा की परिचायक हैं। आदिनाथ की मूर्तियों में अधिकांशतः यक्ष-यक्षी गोमुख और गरुड़वाहिनी चक्रेश्वरी हैं। कुछ उदाहरणों में यक्ष वृषभमुख वाले नहीं हैं। कई उदाहरणों में मुख्य जिन-आकृति के चारों ओर क्रमशः २३,२४,३३ और ५२ छोटी-छोटी जिन-आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। ४ मूर्तियों में आसन के नीचे नवग्रहों की भी आकृतियाँ अंकित हैं।

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ३३७;

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रंतथाधरकरांकफलेष्टदानम्।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्र शीर्षम्।

—प्र० सारो०, ३-१२९।

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ३४५;

भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेम्बुजे।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे॥

—प्र० सारो०, ३-१५६।

एक उदाहरण में आदिनाथ के पुत्र बाहुबली की भी आकृति अंकित है।[1] कुछ उदाहरणों में यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं किया गया है और कुछ में यक्ष-यक्षी पारम्परिक नहीं हैं। आदिनाथ की मूर्तियों में गोमुख और चक्रेश्वरी के निरूपण में मुख्य विशेषताओं के सन्दर्भ में, दिगम्बर ग्रन्थों के निर्देशों का पालन किया गया है। ऐसी दो मूर्तियाँ खुले संग्रहालय में हैं। ये मूर्तियाँ ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की हैं। अब हम खजुराहो की कुछ विशिष्ट आदिनाथ को मूर्तियों का उल्लेख करेंगे।

आदिनाथ की प्राचीनतम मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर (लगभग ९५० ई०) के गर्भगृह में स्थापित है (चित्र संख्या ८)। यद्यपि आदिनाथ की मुख्य मूर्ति सम्प्रति गायब है पर मूर्ति का सिंहासन एवं परिकर सुरक्षित है। सिंहासन के दायें और बायें कोनों पर क्रमशः चतुर्भुज गोमुख और चक्रेश्वरी को आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। चक्रेश्वरी गरुडवाहिनी है, और गोमुख के चरणों के समीप वृषभवाहन उत्कीर्ण है। गोमुख के दो हाथों में गदा और फल स्पष्ट है। चक्रेश्वरी के तीन हाथों में गदा, चक्र और शंख हैं। मूर्ति के परिकर में कुल ३३ छोटी-छोटी जिन आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। आदिनाथ के दायें और बायें पार्श्वों में क्रमशः ५ और ७ सर्पफणों के छत्रों से युक्त सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। आदिनाथ की एक अन्य ध्यानस्थ मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के पश्चिमी भाग की देवकुलिका में भी स्थापित है (चित्र संख्या ९)।

आदिनाथ की एक विशिष्ट मूर्ति जार्डिन संग्रहालय (क्रमांक १६५१) में सुरक्षित है। आदिनाथ ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं। मूर्ति अत्यन्त खण्डित है और लगभग बारहवीं शती ई० में निर्मित प्रतीत होती है। अन्य सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त इस मूर्ति की विशिष्टता यह है कि इसमें गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी के अतिरिक्त लक्ष्मी और अम्बिका की आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। चतुर्भुज अम्बिका का वाहन सिंह है। लक्ष्मी के ऊपर के दोनों हाथों में पद्म और निचले में अभयमुद्रा और मातुलिङ्ग प्रदर्शित हैं। गरुडवाहिनी यक्षी की केवल एक भुजा सुरक्षित है, जिसमें गदा प्रदर्शित है। चतुर्भुज गोमुख यक्ष के हाथों में परशु, पुस्तक, कमण्डलु और मुद्रा प्रदर्शित हैं।[2]

---

१. विस्तार के लिये उ० भा० जै० प्र०, पृ० १८५-८६।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, "ए यूनीक इमेज ऑफ ऋषभनाथ इन द ओल्ड आर्कियोलाजिकल म्यूजियम खजुराहो", ज० ओ० ई०, खण्ड २४, अंक १-२, पृ० २४७-४९।

एक अन्य मूर्ति स्थानीय पुरातत्त्व संग्रहालय (क्रमांक १६८४) में सुरक्षित है। इसमें आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में पद्म पर खड़े हैं। लटकती केशावलि और वृषभ लांछन से युक्त इस आदिनाथ मूर्ति में यक्षी के रूप में चतुर्भुजा चक्रेश्वरी आमूर्तित है पर यक्ष गोमुख नहीं है। गरुडवाहिनी यक्षी के दो सुरक्षित हाथों में चक्र और अभयमुद्रा प्रदर्शित है। द्विभुज यक्ष कुबेर है, जिसके एक हाथ में पर्स और दूसरे में फल है। परिकर में कुल ५२ छोटी जिन-आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें से एक के सिर पर तीन सर्पफणों का छत्र (पार्श्वनाथ) हैं। यह मूर्ति दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की है। आदिनाथ की लगभग ग्यारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थमूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक २२०७३) में सुरक्षित है (चित्र संख्या १०)। इस मूर्ति में यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ नहीं प्रदर्शित हैं। परिकर में २४ छोटी जिनमूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें से कुछ खण्डित हैं।[1]

२. अजितनाथ

अजितनाथ इस अवसर्पिणी के दूसरे जिन हैं। अजितनाथ का लांछन गज है। जैन परम्परा में इनके यक्ष और यक्षी के नाम महायक्ष और अजितबाला या अजिता है। दिगम्बर परम्परा में इनकी यक्षी रोहिणी है। खजुराहो में अजितनाथ के यक्ष और यक्षी के निरूपण में तनिक भी परम्परा का पालन नहीं किया गया है। यक्ष और यक्षी केवल एक ही उदाहरण (खुला संग्रहालय, क्रमांक के० ४३) में उत्कीर्ण हैं। खजुराहो में अजितनाथ की चार मूर्तियाँ हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की ये सभी मूर्तियाँ स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। तीन उदाहरणों में अजितनाथ ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं। एक उदाहरण (खुला संग्रहालय क्रमांक के० ६६) में चंवरधारी सेवकों के स्थान पर दोनों ओर कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

संग्रहालय की एक मूर्ति (क्रमांक के० ४३) में यक्ष की आकृति छिपी है, किन्तु द्विभुज यक्षी की एक भुजा में खड्ग प्रदर्शित है। संग्रहालय ही की एक अन्य मूर्ति (क्रमांक के० २२) धर्मचक्र के समीप पुरुष और स्त्री की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। गज लांछन सभी उदाहरणों पर अंकित हैं।[2]

---

१. तिवारी, एम० एन० पी०, "जिन इमेजेज़ इन द आर्कियोलाजिकल म्यूजियम खजुराहो" महावीर एण्ड हिज़ टीचिंग्स्, पृ० ४१३-१७।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, "द जिन इमेजेज ऑफ खजुराहो विद् स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ", जैन जर्नल, खण्ड १०, अं० १, जुलाई १९७५, पृ० २२-२५।

३. सम्भवनाथ

सम्भवनाथ इस अवसर्पिणी के तीसरे जिन हैं। सम्भवनाथ का लांछन अश्व है। जैन परम्परा में इनके यक्ष और यक्षी क्रमशः त्रिमुख और दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) हैं। खजुराहो की सम्भवनाथ-मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का पारम्परिक अंकन नहीं हुआ है। खजुराहो में सम्भवनाथ की ४ मूर्तियाँ हैं। मन्दिर नं० २५ की मूर्ति ११५८ ई० के लेख से युक्तहै। यक्ष-यक्षी केवल दो ही उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण (खुला संग्रहालय क्रमांक के० ५०) में सिंहासन के दोनों ओर द्विभुज यक्षियों की मूर्तियाँ ही उत्कीर्ण हैं, जिनके एक हाथ में खड्ग है। मूर्ति लगभग ग्यारहवीं शती ई० की है। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १७१५) में भी सम्भवनाथ की ध्यानमुद्रा में बैठी एक मूर्ति सुरक्षित है (चित्र संख्या ११)। यहाँ यक्ष-यक्षी द्विभुज हैं। द्विभुज यक्ष कुबेर यक्ष है। उसके हाथों में कपाल एवं पर्स प्रदर्शित हैं। द्विभुज यक्षी के एक हाथ में पद्म और दूसरा अभयमुद्रा में है। यह मूर्ति लगभग ग्यारहवीं शती ई० की है।[1]

४. अभिनंदन

अभिनंदन चौथे जिन हैं। इनका लांछन कपि है। जैन परम्परा में उनके यक्ष और यक्षी यज्ञेश्वर (या ईश्वर) और काली (या वज्र-शृंखला) हैं। खजुराहो में इनकी दो मूर्तियाँ हैं। दोनों उदाहरणों में अभिनंदन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। ये मूर्तियाँ दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की हैं। एक मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप की भीतरी दीवाल के समीप है। कपिलांछन से युक्त दोनों मूर्तियों में द्विभुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं, जिनका एक हाथ अभयमुद्र में और दूसरे में फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

५. सुमतिनाथ

पांचवें जिन सुमतिनाथ का लांछन क्रौञ्च पक्षी है। सुमतिनाथ के यक्ष-यक्षी तुम्बरु और महाकाली (या नरदत्ता) हैं। खजुराहो में इनकी दो मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की हैं। दोनों उदाहरणों में सुमतिनाथ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनके साथ

१. तिवारी, एम० एन० पी०, "द आइकानोग्राफी ऑफ द इमेजेज ऑफ सम्भवनाथ एट खजुराहो", जर्नल गुजरात रिसर्च सोसायटी, खं० ३५, अं० ४, अक्तूबर १९७३, पृ० ३-९।

लांछन और द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। उनके हाथों में अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल प्रदर्शित हैं।[1]

६. पद्मप्रभ

पद्मप्रभ छठें तीर्थंकर हैं। पद्मप्रभ की खजुराहो में एक मूर्ति है। पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में सुरक्षित यह मूर्ति दसवीं शती ई० की है। ध्यानमुद्रा में विराजमान जिन के साथ चतुर्भुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। परिकर में वीणा बजाती सरस्वती की दो मूर्तियाँ हैं। कुछ छोटी-छोटी जिन-मूर्तियाँ भी अंकित हैं। यक्ष-यक्षियों के साथ पारम्परिक विशेषताएँ नहीं प्रदर्शित हैं। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा में पद्मप्रभ का लांछन पद्म बताया गया है तथा उनके यक्ष-यक्षी कुसुम एवं अच्युता (या मनोवेगा) हैं।[2]

७. सुपार्श्वनाथ

सातवें जिन सुपार्श्वनाथ का लांछन स्वस्तिक है। परन्तु मूर्तियों में सुपार्श्वनाथ के साथ स्वस्तिक लांछन सामान्यतः नहीं प्रदर्शित किया गया है। मूर्तियों में उनकी पहचान केवल पाँच या नौ सर्पफणों के छत्रों के आधार पर की गई है, जिन्हें उनके सिर के ऊपर प्रदर्शित किया जाता है। उनके यक्ष और यक्षी के नाम मातंग और शान्ता (या काली) हैं। खजुराहो में लगभग बारहवीं शती ई० की इनकी दो मूर्तियाँ हैं। यह मूर्तियाँ मन्दिर सं० ५ और २८ में हैं। दोनों उदाहरणों में यक्ष और यक्षी अनुपस्थित हैं। उनके स्थान पर पद्म धारण करने वाली देवियाँ अंकित हैं, जो सम्भवतः लक्ष्मी का अंकन है। सुपार्श्वनाथ कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं और उनके सिर के ऊपर पाँच सर्पफणों का छत्र है।[3]

८. चन्द्रप्रभ

चन्द्रप्रभ आठवें जिन हैं। इनका लांछन चन्द्रमा है। उनके यक्ष-यक्षी के नाम विजयी और भृकुटि हैं। खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की चन्द्रप्रभ की दो मूर्तियाँ हैं। दोनों में चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। ये मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मन्दिर तथा मन्दिर सं० ३२ में हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी का एक हाथ अभयमुद्रा में और दूसरे में फल (या पद्म) प्रदर्शित है। दूसरे

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० २०५।

२. वही, पृ० २०७।

३. वही, पृ० २०९-११।

उदाहरण में यक्षी चार हाथों वाली है किन्तु यक्ष-यक्षी का अंकन पारम्परिक नहीं है।

९. शान्तिनाथ

शान्तिनाथ सोलहवें जिन हैं। उनका लांछन मृग है। उनके यक्ष और यक्षी गरुड एवं निर्वाणी (या महामानसी) हैं। खजुराहो में ग्यारहवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की शान्तिनाथ की चार मूर्तियाँ हैं। परन्तु किसी उदाहरण में शान्तिनाथ के साथ पारम्परिक लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। दो उदाहरणों में शान्तिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। शान्तिनाथ मन्दिर की विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति १०२८ ई० की है। शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणों वाले हैं।

१०. मुनिसुव्रत

मुनिसुव्रत बीसवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन कूर्म है। उनके यक्ष-यक्षी वरुण एवं नरदत्ता (या बहुरूपा) हैं। खजुराहो में इनकी एक मूर्ति है। यह मूर्ति लगभग ग्यारहवीं शती ई० की है और मन्दिर सं० २० में सुरक्षित है। यक्ष-यक्षी की आकृतियाँ अनुपस्थित हैं पर कूर्म लांछन स्पष्ट है।[1]

११. नेमिनाथ

नेमिनाथ बाइसवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन शंख है। गोमेध और अम्बिका इनके यक्ष और यक्षी हैं। अन्यत्र नेमिनाथ की मूर्तियों का अंकन विशेष लोकप्रिय था, पर खजुराहो में नेमिनाथ की केवल दो ही मूर्तियाँ हैं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की मूर्तियों में ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमिनाथ के साथ यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। दोनों उदाहरणों में पारम्परिक यक्षी अम्बिका ही उत्कीर्ण है। अम्बिका के एक हाथ में बालक और दूसरे में आम्रलुंबि है। यक्ष के रूप में एक उदाहरण में कुबेर उत्कीर्ण है।

१२. पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर हैं। उनका लांछन सर्प है। उनके पारम्परिक यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र (या पार्श्व) या पद्मावती हैं। पार्श्वनाथ की मूर्तियों में शीर्षभाग में सात सर्पफणों के छत्र के प्रदर्शन की परम्परा है। स्मरणीय है कि जिन-मूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्वनाथ के साथ ही सात सर्प-

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० २३६-३७

फणों का छत्र प्रदर्शित हुआ है। पार्श्वनाथ के बाद ही आदिनाथ की लाक्षणिक विशेषताएँ निर्धारित हुईं। दिगम्बर परम्परा में पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष को चतुर्भुज और सर्पफणों के छत्र से युक्त बतलाया गया है। यक्ष का वाहन कूर्म है। ग्रन्थों में उनके दो हाथों में सर्प और शेष दो में नागपाश एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] दिगम्बर परम्परा में पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प बतलाया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार में सम्भवतः २४ भुजाओं वाली देवी का ध्यान किया गया है। देवी के विभिन्न हाथों में अंकुश, पाश, शंख, पद्म एवं अक्षमाला के प्रदर्शित किये जाने का उल्लेख है।[2]

पार्श्वनाथ की लगभग १५ मूर्तियाँ मिली हैं। मूर्तियों की संख्या के आधार पर आदिनाथ के बाद पार्श्वनाथ का ही नाम आता है।[3] अधिकांश मूर्तियाँ ग्यारहवीं शती ई० की हैं। पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियाँ तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हैं। सभी उदाहरणों में पार्श्वनाथ के सिर के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। कभी-कभी पार्श्वनाथ के शरीर के पिछले भाग में उनके चरणों तक सर्प की कुण्डलियाँ प्रदर्शित होती हैं। सर्पफणों के कारण ही पार्श्वनाथ की मूर्तियों में प्रभामण्डल का प्रदर्शन नहीं हुआ है। किसी भी मूर्ति में सिंहासन पर सर्पलांछन नहीं उत्कीर्ण है। केवल सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर ही पार्श्वनाथ की पहचान सम्भव हो सकी है।

कायोत्सर्ग मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। पर ध्यानस्थ मूर्तियों में तीन उदाहरणों में यक्ष-यक्षी की मूर्तियाँ अंकित हैं। दो उदाहरणों में पार्श्वनाथ के एक ओर चांवरधारी पुरुष-आकृति और दूसरी ओर छत्रधारिणी स्त्री-आकृति उत्कीर्ण है। इस आकृतियों के सिरों पर

---

१. ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधःसव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता।
श्रीनागराजककुदं धरणोभ्रनीलः कूर्माश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम्॥
—प्र० सारो०, ३।१५१

२. येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तसां द्विषोयात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्पादिदो अष्टका।
तां शांतामरुणां स्फुरच्छणि सरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मिपद्मावतीम्॥
—प्र० सारो०, ३।१७७

३. अध्ययन की दृष्टि से केवल ११ मूर्तियाँ ही सुरक्षित हैं।

सर्पफण का छत्र प्रदर्शित है, जो उनके धरणेन्द्र और पद्मावती होने का परिचायक है। यक्ष-यक्षियों के अंकन में पारम्परिक विशेषताओं का निर्वाह नहीं किया गया है।

पार्श्वनाथ की दो सुन्दर मूर्तियाँ क्रमशः मन्दिर सं० १ और जार्डिन संग्रहालय (क्रमांक १६६८) में हैं। ग्यारहवीं शती ई० की इन ध्यानस्थ मूर्तियों में चंवरधारी धरणेन्द्र और छत्रधारिणी पद्मावती की आकृतियाँ चित्रित हैं। पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १६१८) की मूर्ति में द्विभुज यक्ष की आकृति उत्कीर्ण है। तीन सर्पफणों की छत्र वाली यक्षी की बायीं भुजा में सर्प प्रदर्शित है। दायें ओर धरणेन्द्र को सर्पफणों के छत्र से युक्त तथा नमस्कार मुद्रा में दिखाया गया है। द्विभुज यक्ष और चतुर्भुज यक्षी की आकृति वाली एक मूर्ति स्थानीय संग्रहालय (क्रमांक के० १००) में सुरक्षित है। यक्ष और यक्षी दोनों सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। यक्ष के हाथों में फल व जलपात्र हैं। यक्षी के दो हाथ खण्डित हैं और दो में पद्म और अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं।

पारम्परिक विशेषताओं वाले यक्ष-यक्षी का अंकन केवल एक उदाहरण में प्राप्त हुआ है। बारहवीं शती ई० की यह मूर्ति खुले संग्रहालय (के० ६८) में सुरक्षित है। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं और उनके हाथों में अभयमुद्रा, सर्प और जलपात्र प्रदर्शित हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ भी कलाकार ने परम्परा का पूर्णरूप से पालन नहीं किया है। उसने केवल शीर्ष भाग में सर्पफणों के छत्र एवं हाथ में सर्प के प्रदर्शन से ही सन्तोष कर लिया है।[1]

१३. महावीर

महावीर इस अवसर्पिणी के अन्तिम तीर्थंकर एवं ऐतिहासिक पुरुष हैं। उनका लांछन सिंह तथा यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका हैं। खजुराहो में आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ के बाद इन्हें ही सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। दिगम्बर परम्परा में मातंग को द्विभुज बताया गया है। गजारूढ़ मातंग के हाथों में वरदमुद्रा एवं मातुलिङ्ग के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है।[2] सिद्धायिका को भी दिगम्बर परम्परा में द्विभुजा बतलाया

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० २६७-६८।

२. मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथ यच्छन्।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोगतु तुष्टिमिष्टया ॥
—प्र० सारो०, ३।१५२

गया है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** में यक्षी का वाहन सिंह है। यक्षी का एक हाथ वरद्‌मुद्रा में एवं दूसरे में पुस्तक के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है।[१]

खजुराहो में महावीर की १० से अधिक मूर्तियाँ हैं। दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की इन मूर्तियों में से केवल नौ मूर्तियाँ ही अध्ययन की दृष्टि से पूरी तरह सुरक्षित हैं। एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य सभी में महावीर ध्यान-मुद्रा में बैठे हैं। महावीर के साथ केवल ६ उदाहरणों में यक्ष और यक्षी की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सिंह-लाछन सभी मूर्तियों में दिखाया गया है। कुछ मूर्तियों में महावीर के सिंह लांछन को धर्मचक्र के समीप बाहर की ओर झाँकते हुए उत्कीर्ण किया गया है। महावीर के सिंह लांछन का इस शैली में अंकन अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है।[२]

महावीर की प्राचीनतम मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। उनके हाथों में अभयमुद्रा तथा फल प्रदर्शित हैं। मन्दिर सं० २ की मूर्ति में यक्ष यक्षी चतर्भुज हैं। यक्ष के हाथों में पर्स, शूल, पद्म और दण्ड प्रदर्शित हैं तथा वाहन सिंह है। यक्षी के हाथों में फल, चक्र, पद्म और शंख प्रदर्शित है। वाहन यहाँ भी सिंह है। कुछ अन्य मूर्तियों में भी चक्र और शंख से युक्त यक्षी की आकृति उत्कीर्ण है। मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कलाकार ने यक्ष एवं यक्षियों के निरूपण में परम्परा का पालन नहीं किया था। यक्षी के हाथों में परम्परा के विपरीत चक्र और शंख का प्रदर्शन सिद्धायिका के निरूपण में आदिनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी का प्रभाव दर्शाता है।

द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी जिन मूर्तियाँ

खजुराहो में अन्य दिगम्बर कलाकेन्द्रों के समान ही द्वितीर्थी तथा त्रितीर्थी जिन-मूर्तियों का अंकन भी विशेष लोकप्रिय था। द्वितीर्थी जिन मूर्तियों में दो जिनों को तथा त्रितीर्थी जिन-मूर्तियों में तीन जिनों को एक साथ, किन्तु अलग-अलग सिंहासनों पर अष्टप्रतिहार्यों एवं यक्ष और

---

१. सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रितांगजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम्।
श्रितां सुभद्रासनमत्रयज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम्॥
—प्र० सारो०, ३।१७८.

२. यह बात हमें अपने शोध निर्देशक से अध्ययन एवं परामर्श के दौरान ज्ञात हुई।

यक्षियों के साथ दर्शाया गया है। खजुराहो में द्वितीर्थी जिन-मूर्तियों के नौ तथा त्रितीर्थी जिन-मूर्तियों का एक उदाहरण हैं। त्रितीर्थी जिन-मूर्ति मन्दिर सं० ८ में है। ग्यारहवीं शती ई० की इस मूर्ति में अन्तिम तीन तीर्थंकरों, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।[१] द्वितीर्थी मूर्तियों में जिनों के साथ लांछनों को नहीं प्रदर्शित किया गया है, जो आश्चर्यजनक है। यक्ष-यक्षी युगलों की आकृतियों में भी कोई स्वरूपगत भिन्नता नहीं प्राप्त होती है।

खजुराहो में जिन चौमुखी मूर्ति का केवल एक उदाहरण मिला है। ग्यारहवीं शती ई० की यह मूर्ति पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (क्रमांक १५८८) में है। कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियों की परम्परा में ही यहाँ भी केवल आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ की पहचान सम्भव है। आदिनाथ के साथ जटाएँ और पार्श्वनाथ के साथ सात सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। लांछन किसी भी जिन के साथ नहीं प्रदर्शित है। चार दिशाओं के चार जिनों के अतिरिक्त मूर्ति में ४८ अन्य छोटी जिन-आकृतियाँ भी अंकित हैं। यक्ष-यक्षी युगल किसी के साथ नहीं प्रदर्शित हैं।

●

---

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ३०३।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, "जैन तीर्थंकर की द्वितीर्थी मूर्तियों का प्रतिमा-निरूपण", जैन सिद्धान्तभास्कर, खं० ३०, अं० १, पृ० ३३-४०।

पंचम अध्याय

खजुराहो की जिनेतर मूर्तियाँ

सामान्य

खजुराहो में जिनों के अतिरिक्त अन्य कई देवी-देवताओं की भी मूर्तियां मिली हैं। इनमें से अधिकांश जैन देवकुल के देवता हैं। किन्तु कुछ उदाहरणों में जैन मन्दिरों पर हिन्दू देवताओं के अंकन को भी देखा जा सकता है, जो जैन देवकुल पर हिन्दू प्रभाव का संकेत देता है। जैन मन्दिरों पर हिन्दू देवताओं का अंकन खजुराहो में दोनों सम्प्रदायों के सौमनस्यतापूर्ण सम्बन्धों को भी अभिव्यक्त करता है। पार्श्वनाथ जैन मन्दिर के मण्डप की भित्ति पर प्रमुख हिन्दू देवताओं का स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ अंकन किया गया है। हिन्दू देवताओं की शक्तियाँ पारम्परिक न होकर द्विभुज और सामान्य लक्षणों वाली हैं। विष्णु के साथ लक्ष्मी और ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी का अंकन नहीं किया गया है। हिन्दू देवताओं में मुख्य रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, बलराम, अग्नि और कुबेर आदि की मूर्तियाँ पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्तियों पर उत्कीर्ण हैं। इन देवताओं को चतुर्भुज और त्रिभंग मुद्रा में निरूपित किया गया है। हिन्दू देवताओं के हाथों में पारम्परिक आयुध प्रदर्शित हैं, जैसे विष्णु के साथ चक्र, शंख गदा; ब्रह्मा के साथ सुक, कमण्डलु; शिव एवं शिव के साथ जटामुकुट, सर्प और त्रिशूल प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की बाह्य भित्ति की देव मूर्तियों में इन्हीं देवताओं की स्वतन्त्र या शक्ति के साथ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। केवल एक उदाहरण में जैन यक्षी अम्बिका का अंकन हुआ है, और बीच-बीच में जिनों की भी कुछ मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जिन मूर्तियां लांछन रहित हैं। हिन्दू देवताओं को अपनी शक्तियों के साथ सदैव आलिंगन मुद्रा में निरूपित किया गया है। देवताओं की आलिंगन मूर्तियों का निर्माण जैन परम्परा सम्मत नहीं है।

हिन्दू देवकुल के ऊपर वर्णित देवताओं के अतिरिक्त जैन मन्दिरों के विभिन्न भागों पर जैन देवताओं की भी कई आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी पर्याप्त संख्या में मिली हैं, जो स्थानीय संग्रहालयों एवं नवीन जैन मन्दिरों में सुरक्षित हैं।

जैन देवकुल में जिनों के पश्चात् यक्ष और यक्षियों को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि ये जिनों के शासन देवता होते हैं। अतः

खजुराहो में भी जिनों के पश्चात् इन्हीं की सर्वाधिक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। यहाँ प्रारम्भ में ही उल्लेख करना समीचीन होगा कि हमें जिन मूर्तियों के सिंहासनों के अतिरिक्त खजुराहो में यक्ष और यक्षी की स्वतन्त्र मूर्तियाँ भी मिली हैं। इन मूर्तियों के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि खजुराहो में जिनों के साथ एवं स्वतन्त्र दोनों ही रूपों में यक्षियों का अंकन यक्षों की तुलना में अधिक लोकप्रिय था। खजुराहो में सभी २४ यक्ष और यक्षियों की मूर्तियाँ नहीं उत्कीर्ण की गईं।[१] यक्षों में केवल कुबेर यक्ष की ही स्वतन्त्र मूर्तियाँ मिली हैं। आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ के गोमुख और धरणेन्द्र यक्षों का अंकन केवल जिन मूर्तियों तक ही सीमित था। गोमुख और धरणेन्द्र यक्षों की स्वतन्त्र मूर्तियों का न उत्कीर्ण किया जाना आश्चर्यजनक है।

यक्षियों में रूपमण्डन में वर्णित चार प्रमुख जिनों, आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की क्रमशः चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका यक्षियों की ही मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। चक्रेश्वरी और अम्बिका अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय यक्षियाँ थीं। पुरातात्त्विक संग्रहालय खजुराहो की एक मूर्ति की सम्भावित पहचान मनोवेगा यक्षी से की जा सकती है।[२] अन्य स्थलों के समान ही खजुराहो में भी यक्ष और यक्षियों तथा अन्य देवताओं के शीर्षभाग में छोटी जिन मूर्तियों के उत्कीर्णन की परम्परा रही है। शीर्ष भाग की छोटी जिन आकृति मुख्य मूर्ति के जैन देवता होने की सूचना देती है।

यक्ष और यक्षियों के बाद जैन देवकुल में महाविद्याओं को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। किन्तु खजुराहो की जैन मूर्तियों में महाविद्याओं की मूर्तियों के उदाहरण हमें नहीं प्राप्त होते हैं। केवल ग्यारहवीं शती ई० के आदिनाथ जैन मन्दिर की भित्तियों पर उत्कीर्ण १६ रथिका बिम्बों की सम्भावित पहचान डॉ० एम० एन० पी० तिवारी ने महाविद्या मूर्तियों से की है।[3] रथिकाओं में स्थापित मूर्तियाँ चार से आठ भुजाओं वाली

---

१. विस्तार के लिए द्र०, क्लाज ब्रुन "द फिगर ऑफ द टू लोवर रिलीफ आन द पार्श्वनाथ टेम्पल एट खजुराहो", आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि स्मृति ग्रन्थ, १९५६, पृ० ७-३५; उ० भा० जै० प्र०, पृ० १५०-५२.

२. उ० भा० जै० प्र०, पृ० १५६।

३. तिवारी, एम० एन० पी०, 'द आइकोनोग्राफी ऑफ द सिक्सटीन महाविद्याज़'—सम्बोधि, खं० २, अं० ३, पृ० १५।

हैं, और ललितमुद्रा में आसीन या त्रिभंग में खड़ी हैं। अधिकांश उदाहरणों में मूर्तियाँ अत्यन्त खण्डित हैं, जिसके कारण उनके वाहनों एवं हाथों के आयुधों की स्पष्ट जानकारी काफी कठिन हो जाती है। इस कारण इन मूर्तियों की निश्चित पहचान सम्भव नहीं है। वर्तमान स्थिति में इसे १६ महाविद्याओं का सामूहिक अंकन स्वीकार करने में कोई पारम्परिक कठिनाई नहीं है।

यक्ष-यक्षियों एवं महाविद्याओं के अतिरिक्त खजुराहो में बाहुबली, सरस्वती, लक्ष्मी, जैन युगलों, नवग्रहों, अष्टदिक्पालों, जैन आचार्यों एवं १६ मांगलिक स्वप्नों के भी चित्रण प्राप्त हुए हैं। अगली पंक्तियों में हम प्रमुख मूर्तियों का अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से उल्लेख करेंगे।

यक्ष-यक्षी

कुबेर—यक्षों में केवल कुबेर या सर्वानुभूति की मूर्तियाँ मिली हैं। कुबेर या सर्वानुभूति बाइसवें जिन नेमिनाथ के यक्ष हैं। कुबेर के सम्बन्ध में स्मरणीय है कि ये जैन परम्परा के प्राचीनतम यक्ष हैं। शिल्प में इनके साथ पर्स का प्रदर्शन लोकप्रिय था। खजुराहो में इनकी दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की चार मूर्तियाँ हैं। सभी उदाहरणों में कुबेर चतुर्भुज और ललितमुद्रा में विराजमान हैं। उनके हाथों में पद्म, फल एवं पर्स का प्रदर्शन हुआ है। एक हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है। यक्ष के साथ गज-वाहन का अंकन नहीं प्राप्त होता है। चरणों के समीप सामान्यतः दो जलकलश उत्कीर्ण हैं, जो निधियों के सूचक हैं।[1] स्मरणीय है कि कुबेर धन के देवता हैं।

चक्रेश्वरी—यक्षियों में आदिनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी की अम्बिका के बाद सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। अधिकांश उदाहरणों में चक्रेश्वरी किरीटमुकुट से युक्त है, और गरुड़ पर आरूढ़ है। चक्रेश्वरी की कुल १३ मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें से ९ मूर्तियाँ जैन मन्दिरों के उत्तरंगों पर उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में चक्रेश्वरी चार से दस भुजाओं वाली है। पार्श्वनाथ, घण्टाई एवं आदिनाथ मन्दिरों के ललाट बिम्ब के रूप में भी चक्रेश्वरी ही आमूर्तित है। चक्रेश्वरी के हाथों में चक्र, शंख और गदा का नियमित प्रदर्शन हुआ है। अन्य हाथों में अभय या वरद-मुद्रा, खड्ग, धनुष एवं कलश जैसी सामग्रियाँ प्रदर्शित हैं। स्मरणीय है कि दिगम्बर परम्परा में चक्रेश्वरी के केवल चतुर्भुज और द्वादशभुज स्वरूपों का ही निरूपण किया

१. उ० भा० जै० प्र०, पृ० ४५८।

गया है। जैन प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में चक्रेश्वरी के हाथों में शंख और गदा के प्रदर्शन का अनुल्लेख है। चक्रेश्वरी के हाथों में चक्र के साथ शंख एवं गदा का प्रदर्शन स्पष्टतः यक्षी पर हिन्दू वैष्णवी का प्रभाव दर्शाता है।

अम्बिका—२२वें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की खजुराहो में सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं। ज्ञातव्य है कि अम्बिका जैन परम्परा की प्राचीनतम यक्षी है। अम्बिका की दसवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की स्वतन्त्र मूर्तियाँ मिली हैं। एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका चार हाथों वाली है। अम्बिका की एकमात्र द्विभुज मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में अम्बिका के एक हाथ में आम्रलुंबि है और दूसरे में बालक। यहाँ उल्लेखनीय है कि दिगम्बर ग्रंथों में अम्बिका को द्विभुज बताया गया है, पर खजुराहो में अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियाँ ही अधिक लोकप्रिय थीं। चतुर्भुज मूर्तियों में अम्बिका के ऊपर के दोनों हाथों में सामान्यतः पद्म (या पद्म-पुस्तक) प्रदर्शित हैं। निचले हाथों में परम्परा के अनुरूप ही आम्रलुम्बि और बालक प्रदर्शित हैं। मन्दिर सं० २७ की एक मूर्ति में अम्बिका के ऊपरी हाथों में पद्म के स्थान पर अंकुश और पाश प्रदर्शित है। सभी उदाहरणों में अम्बिका के शीर्ष भाग में नेमिनाथ की छोटी जिन मूर्ति और आम्रवृक्ष की टहनियाँ उत्कीर्ण हैं। यक्षी के वाहन के रूप में सदैव सिंह को प्रदर्शित किया गया है।[1] देवी के समीप ही अधिकांश उदाहरणों में उसका दूसरा पुत्र भी निरूपित है, जिसके एक हाथ में कभी-कभी फल प्रदर्शित है।

पद्मावती—अम्बिका और चक्रेश्वरी के बाद पद्मावती की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ मिली हैं। खजुराहो में पद्मावती की कुल ३ मूर्तियाँ हैं। ग्यारहवीं शती ई० की तीनों मूर्तियों में पद्मावती चतुर्भुज है। पाँच या सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती का वाहन कुक्कुट है। जैन परम्परा में पद्मावती का वाहन कुक्कुट या कुक्कुट-सर्प बताया गया है। यक्षी

---

१. तिवारी, एम० एन० पी०, 'इमेजेज ऑफ अम्बिका इन द जैन टेम्पल्स एट खजुराहो' ज० ओ० इं०, खं० २४, अं० १-२; पृ० २४३-४६; 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा निरूपण' सम्बोधि, सं० ३, अं० २-३, पृ० ३७-३८।

के हाथों में पाश, अंकुश, पद्म (या जलपात्र) और अभय या वरद्-मुद्रा प्रदर्शित है ।[1]

सिद्धायिका—महावीर की यक्षी सिद्धायिका की केवल एक मूर्ति है। सिद्धायिका की यह मूर्ति मन्दिर सं० २४ के उत्तरंग पर उत्कीर्ण है। सिंहवाहन वाली चतुर्भुजा देवी के हाथों में वरद्-मुद्रा, खड्ग, चक्र और जलपात्र प्रदर्शित हैं ।[2]

जार्डिन संग्रहालय का विशिष्ट उत्तरंग—जैन देवकुल की तीन प्रमुख यक्षियों का अंकन करने वाला एक विशिष्ट उत्तरंग जार्डिन संग्रहालय (क्रमांक १४६७) में सुरक्षित है । इस सुन्दर उत्तरंग पर क्रमशः बायें से दायें चतुर्भुज अम्बिका, चक्रेश्वरी और पद्मावती की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । तीनों यक्षियाँ एक पैर लटका कर ललितमुद्रा में बैठी हैं । चतुर्भुजा अम्बिका के ऊपरी हाथों में पद्म और अन्य दो में आम्र-लुंबि और बालक प्रदर्शित है । समीप ही सिंहवाहन और अम्बिका का दूसरा पुत्र भी अंकित है । शीर्षभाग में आम्रवृक्ष की टहनियाँ और छोटी जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है । गरुड़वाहिनी चक्रेश्वरी के तीन अवशिष्ट करों में वरद्मुद्रा, गदा और चक्र हैं । पद्मावती के तीन सुरक्षित हाथों में वरद्मुद्रा, पाश और अंकुश देखा जा सकता है । पद्मावती का वाहन कुक्कुट है । सिर के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है ।

लक्ष्मी और सरस्वती—खजुराहो में लक्ष्मी और सरस्वती की भी कई मूर्तियाँ हैं । लक्ष्मी सामान्यतः चतुर्भुजा और पद्मासना है । उनके दो हाथों में पद्म और दो में अभय या वरद्-मुद्रा और जलपात्र प्रदर्शित हैं । हाथों में स्थित पद्म के ऊपर दो गज आकृतियाँ भी चित्रित हैं, जिनके सूड़ों में जलकलश हैं । यह गज या अभिषेक लक्ष्मी का अंकन है ।

जैन परम्परा में सरस्वती का पूजन प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय था । जैन परम्परा में सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा से मिली है । कुषाणकालीन इस मूर्ति में देवी के एक हाथ में पुस्तक प्रदर्शित है ।

---

१. तिवारी, एम० एन० पी०, 'उत्तर भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमा निरूपण', अनेकान्त, वर्ष २७, अं० २, पृ० ३४-४१; उ० भा० जै० प्र०, पृ० ४९४-९५ ।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, 'द आइकोनोग्राफी ऑफ द जैन यक्षी सिद्धायिका', ज० ए० सो०, ख० १५, अं० १-४, पृ० ९७-१०३ ।

खजुराहो में भी सरस्वती का अङ्कन विशेष लोकप्रिय था। पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप के अधिष्ठान पर उत्तर और दक्षिण की ओर सरस्वती की दो मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके अतिरिक्त प्रवेश-द्वारों के उत्तरंगों पर भी सरस्वती आमूर्तित है। पार्श्वनाथ मन्दिर की एक षड्भुज मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी में देवी चतुर्भुजा है। खजुराहो की सरस्वती मूर्तियाँ पूर्णरूप से परम्परा से निर्देशित नहीं प्रतीत होती हैं। सरस्वती का हंसवाहन केवल एक उदाहरण में देखा जा सकता है। सरस्वती के हाथों में पुस्तक, वीणा, पद्म और वरद्मुद्रा (या अभयमुद्रा) के अतिरिक्त अक्ष-माला, कमण्डल और फल भी प्रदर्शित हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर की षड्भुज सरस्वती की मूर्ति में देवी का हंसवाहन नहीं उत्कीर्ण है। देवी के दो ऊपरी हाथों में पद्म और पुस्तक तथा मध्य के दोनों हाथों में वीणा और निचले हाथों में वरद्-मुद्रा एवं कमण्डल प्रदर्शित है। देवी के दोनों पार्श्वों में दो चँवरधारी सेवक एवं उपासकों का अङ्कन देवी की विशेष प्रतिष्ठा का परिचायक है। शीर्षभाग में छोटी-छोटी जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।[१]

जैन युगल—खजुराहो में जैन युगलों का अङ्कन भी लोकप्रिय था। ऐसी मूर्तियों में पुरुष और स्त्री युगल को ललितमुद्रा में अलंकृत आसन पर विराजमान दिखाया गया है। स्त्री की गोद में सदैव एक बालक प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणों में पुरुष आकृति की गोद में भी बालक दिखाया गया है। शीर्षभाग में वृक्ष अङ्कित है, जिसके मध्य में जिन की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। जैन युगल मूर्ति का एक सुन्दर उदाहरण शान्तिनाथ मन्दिर के आंगन में सुरक्षित है। डॉ० यू० पी० शाह ने इन मूर्तियों को तीर्थंकरों के माता-पिता का अङ्कन माना है, जो कई कारणों से स्वीकार्य नहीं है।

जैन आचार्य

जैन आचार्यों की भी कुछ मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें जैन आचार्यों को या तो आमने-सामने बैठकर वार्तालाप करते हुए दिखाया गया है, या फिर उन्हें स्थापना पर पुस्तक रख कर उपदेश देने की मुद्रा में निरूपित किया गया है।

---

१. तिवारी, एम० एन० पी०, 'रिप्रजेन्टेशन ऑफ सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स ऑफ खजुराहो', जर्नल गुजरात रिसर्च सोसायटी, खं० ३४, अं० ४, पृ० ३०७-३१२।

अष्टदिक्पाल एवं नवग्रह

(क) **अष्ट-दिक्पाल**--खजुराहो के पार्श्वनाथ एवं आदिनाथ जैन मन्दिरों में अष्टदिक्पालों के तीन समूह उत्कीर्ण हैं। सभी उदाहरणों में अष्टदिक्पाल चतुर्भुज हैं और पारम्परिक वाहनों के साथ त्रियंगमुद्रा में खड़े हैं। उल्लेखनीय है कि दिक्पाल मूर्तियों के निरूपण के प्रसंग में हिन्दू एवं जैन ग्रन्थों के विवरणों में काफी समानता प्राप्त होती है। खजुराहो के जैन मन्दिरों की अष्टदिक्पाल मूर्तियों के सन्दर्भ में भी इस समानता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। अष्ट दिक्पालों में इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान की गणना की गई है।

जैन मन्दिरों की मूर्तियों में इन्द्र के साथ गजवाहन और हाथों में वज्र और अंकुश प्रदर्शित हैं। अग्नि का वाहन मेष है और उनके हाथों में स्रुवा, पुस्तक और कमण्डल प्रदर्शित है। यम का वाहन महिष है तथा उनके हाथों में पद्म, पुस्तक और खट्वा प्रदर्शित है। नैर्ऋत नग्न है और उनका वाहन श्वान है। उनके हाथों में पद्म, सर्प, खड्ग और कटा हुआ सिर स्थित है। वरुण का वाहन मकर है और उनके हाथों में पाश, पद्म और कमण्डल दिखाये गये हैं। अंकुश, ध्वज एवं कमण्डल से युक्त वायु का वाहन मृग है। कुबेर के हाथों में पद्म, फल और नकुलक (पर्स) प्रदर्शित है। समीप ही निधि का सूचक कलश उत्कीर्ण है। नन्दीवाहन से युक्त ईशान् के हाथों में अक्षमाला, त्रिशूल और कमण्डल प्रदर्शित है। उपर्युक्त विवरण यद्यपि पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप पर उत्कीर्ण अष्ट-दिक्पाल मूर्तियों से सम्बन्धित है, पर अन्यत्र भी सामान्यतः यही विशेष-ताएँ प्रदर्शित हैं।

(ख) **नवग्रह**—जैन मन्दिरों के प्रवेशद्वारों पर नवग्रहों के अंकन की भी परम्परा रही है। सुरक्षित जैन मन्दिरों के अतिरिक्त विभिन्न उत्तरंगों एवं जिन मूर्तियों के आसनों पर भी नवग्रहों का अंकन किया गया है। नवग्रहों में सूर्य, चन्द्रमा (सोम), मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु हैं। उत्तरंगों एवं जिनों की मूर्तियों में नवग्रहों का अंकन एक पंक्ति में किया गया है। नवग्रहों की आकृतियाँ सामान्यतः द्विभुज हैं। उन्हें या तो ललितमुद्रा में आसीन या स्थानकमुद्रा में निरूपित किया गया है। केवल सूर्य या तो समभंग में खड़े हैं या फिर उत्कूटिकासन (उकंडू) में बैठे हैं। सूर्य के दोनों हाथों में सनाल पद्म प्रदर्शित किया गया है। कभी-कभी सूर्य के समीप छाया की भी आकृति अंकित है। चन्द्रमा से शनि यानी अन्य

छः ग्रहों के हाथों में सामान्यतः अभयमुद्रा और जलपात्र प्रदर्शित हैं। राहु का केवल गर्दन का भाग ही प्रदर्शित किया गया है। केतु की आकृति सर्पाकार होती है और उसके दोनों हाथ अञ्जलिमुद्रा में प्रदर्शित होते हैं। उल्लेखनीय है कि अष्टदिक्पालों के समान ही नवग्रहों के स्वरूप निर्धारण में भी हिन्दू परम्परा का ही पालन किया गया था।

शुभ स्वप्न

खजुराहो की जैन मूर्तियों में मांगलिक स्वप्नों के अंकन का भी विशेष महत्त्व है। जैन परम्परा के अनुसार प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म के पूर्व उनकी माता शुभ स्वप्नों का दर्शन करती है। श्वेताम्बर परम्परा में इन स्वप्नों की संख्या चौदह और दिगम्बर परम्परा में सोलह बतलाई गई है। खजुराहो दिगम्बर परम्परा का कलास्थल था, इसी कारण यहाँ १६ मांगलिक स्वप्नों का चित्रण प्राप्त होता है। ये मांगलिक स्वप्न एक पंक्ति के रूप में घण्टाई और आदिनाथ मन्दिरों के प्रवेशद्वारों पर उत्कीर्ण हैं। दिगम्बर ग्रन्थ हरिवंश पुराण में निम्नलिखित सोलह स्वप्नों के उल्लेख हैं—गज, बैल, सिंह, लक्ष्मी (गजलक्ष्मी, पद्मासन, चतुर्भुजा और पद्म से युक्त), चन्द्रमा, सूर्य, मत्स्ययुगल, कलश, दिव्य, झील, समुद्र, सिंहासन, विमान, नागेन्द्र भवन, अपार धनराशि और निर्धूम अग्नि।[1]

खजुराहो में सूर्य, चन्द्रमा और निर्धूम अग्नि जैसे स्वप्नों को केवल प्रतीक रूप में व्यक्त कर इनकी मानव मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गईं। तेरहवें स्वप्न विमान के अंकन में एक द्विभुज आकृति को भी प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार नागेन्द्र-भवन के चित्रण में सर्पफणों के छत्रों वाली नाग और नागी की आकृतियाँ दिखाई गई हैं।[2]

●

१. हरिवंशपुराण, ८.५८-७४।

२. तिवारी, एम० एन० पी०, "खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार की मूर्तियाँ" अनेकान्त, वर्ष २४, अंक ४, पृ० २१८-२२१।

षष्ठ अध्याय

खजुराहो के जैन मन्दिरों की काम-मूर्तियाँ

खजुराहो की काम-मूर्तियाँ भारतीय मूर्ति कला की एक विशिष्ट परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। मानव जीवन में धर्म के साथ ही साथ काम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और खजुराहो की मूर्तिकला में मानवीय काम भावना को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है। किन्तु देव मन्दिरों और वह भी निवृत्ति मार्गी परम्परा के पोषक जैनधर्म के मन्दिरों में मैथुन-मूर्तियों के अंकन के औचित्य को समझने के लिये काम के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को और जेन दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है।

प्राचीन काल से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष जीवन के चार आदर्श रहे हैं। भारतीय मनीषियों ने जीवन के इन चारों पक्षों पर विपुल साहित्य का सृजन किया है। जिस प्रकार अर्थ-शास्त्र, धर्मशास्त्र आदि की रचनायें हुईं, उसी प्रकार कामशास्त्र की भी रचना की गई। जहाँ मनु और बृहस्पति ने धर्म एवं अर्थ का विवेचन किया, वहीं नन्दी ने लगभग एक हजार अध्यायों में काम का विवेचन किया।

वैदिकयुग में काम निन्दनीय नहीं था। किन्तु श्रमण परम्परा के के विकास के साथ ही वह निन्दनीय बन गया। कालान्तर में पुनः जब भक्ति के साथ मनुष्य के भावपक्ष को प्रधानता मिली, काम को भी पुनः स्थान मिल गया। काम सम्बन्धी विषयों का विवेचन भारतीय साहित्य में वैदिक युग से ही पाया जाता है। काम के विभिन्न रूपों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। यहाँ तक कि यजुर्वेद में अश्वमेध यज्ञ के समय मानव-पशु मैथुन का भी प्रतीकात्मक चित्रण प्राप्त होता है।

मन्दिरों पर काम-मूर्तियों के अंकन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अटकलें लगायी जाती रही हैं, किन्तु आजतक स्पष्ट समाधान नहीं प्राप्त हुआ है। मन्दिरों पर काम-सम्बन्धी दृश्यों के अंकन के औचित्य का स्पष्टीकरण सर्वप्रथम जैन ग्रन्थों में ही प्राप्त होता है। वि० सं० ८४० में

रचित हरिवंश पुराण में जिनसेन ने मंन्दिरों में काम-मूर्तियों के अंकन का क्या औचित्य है, इसे स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं—

अत्रैव कामदेवस्य रतेश्च प्रतिमां व्यधात्।
जिनागारे समस्तायाः प्रजायाः कौतुकाय सः ॥२॥
कामदेव रतिप्रेज्ञा कौतुकेन जगज्जनाः।
जिनायतनमागत्य प्रेक्ष्य तत्प्रतिमाद्वयम् ॥३॥

× × × × ×

प्रसिद्धं च गृहं जैनं कामदेव गृहाख्यया।
कौतुकागत लोकस्य जातं जिनमताप्तये ॥५॥

× × × × ×

ततोऽभ्यर्च्य जिनेन्द्रार्चाः सोऽर्चयत् सरतिस्मरम्।
चैत्यार्चनार्थमेतेन कामदेवेन वीक्षितः ॥१०॥

(हरिवंशपुराण, एकोनत्रिंशः सर्गः)

सेठ कामदत्त ने जिन मन्दिर में कामदेव एवं रति की मूर्तियों की स्थापना करवाई, जिसका उद्देश्य जन समूह में कौतूहल उत्पन्न करना था। जिसके फलस्वरूप जनसाधारण जिन मन्दिर में आते और वहाँ आकर जिन की वीतराग मुद्रा का दर्शन कर एवं मुनियों के प्रवचन सुनकर जिन धर्म को प्राप्त करते थे। इसी ग्रन्थ में इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि वासुदेव ने जिन की अर्चना करने के पश्चात कामदेव एवं रति की भी अर्चना की।

उपर्युक्त उल्लेख कतिपय तथ्यों को अत्यन्त स्पष्ट कर देते हैं—

(१) मन्दिरों पर कामदेव एवं रति आदि की मूर्तियों का अथवा मिथुन मूर्तियों के अंकन का उद्देश्य सामान्यजनों में धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना था।

(२) उस युग में जैन उपासकों द्वारा कामदेव एवं रति की पूजा विधिवत प्रारम्भ हो चुकी थी जैसा कि वासुदेव एवं कामदत्त द्वारा इनकी अर्चना करने से स्पष्ट होता है।

(३) कामदेव की मूर्ति को जनमानस की अभिलाषाओं को पूरा करने के उद्देश्य से निर्मित एवं अर्चित किया जाता था। कामदेव ने सेठ कामदत्त को अपने समान रूपवाला बना दिया था। (वही १९.१३)

(४) पुनः जिनसेनकृत हरिवंशपुराण में अनेक ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनमें वासुदेव के द्वारा विभिन्न स्त्रियों से काम-सम्बन्ध स्थापित करने

का उल्लेख है। यहाँ तक कि एक स्थल पर वासुदेव द्वारा पर-स्त्री सम्बन्ध के औचित्य का कथन भी है, जो कि जैनधर्म सम्मत नहीं है। इस विवरण से हमें तत्कालीन समाज की मानसिकता का पता चलता है। सम्भवत: कृष्ण के जीवन में गोपियों के जुड़ने का प्रभाव जैन परम्परा में भी आया हो।

जिनसेन के अन्य ग्रन्थ आदिपुराण में जिन मन्दिर की तुलना वेश्या एवं वेश्यावृत्ति के साथ की गई है, यथा—

वर्णसाङ्कर्यसंभूत चित्रकर्मान्विता अपि।
यद्भित्तयो जगच्चित्तहारिण्यो गणिकाइव॥

(आदिपुराण, प्रथम भाग, षष्ठ पर्व, १८१)

यहाँ मन्दिर की दीवार को वेश्याओं के हाव-भाव के समरूप कल्पित किया गया हैं। जिस प्रकार वेश्या वर्ण संकरता (असमान समागम) से उत्पन्न होती है तथा बहुविध काम विद्या में प्रवीण होकर जगत् के कामी पुरुषों का चित्त हरण करती है, उसी प्रकार मन्दिर की दीवारें भी वर्ण संकरता (काले, पीले, नीले, लाल आदि रंगों के मेल) से बने हुए अनेक चित्रों सहित जगत् के जीवों का चित्त हरण करती हैं।

इससे इस बात की पुष्टि होती है कि मन्दिर की दीवारों को इतना आकर्षक एवं कौतूहल उत्पन्न करने वाला होना चाहिये कि वे लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। खजुराहो के जैन एवं हिन्दू मन्दिर की दीवारों पर काम-मूर्तियों का अंकन शायद इसी आधार पर किया गया होगा। जिनसेन (९ वीं शती) द्वारा किया गया उपर्युक्त कथन इसी धारणा की सम्पुष्टि करता है कि खजुराहो के जैन मन्दिरों की दीवारों पर मिथुन मूर्तियों का अंकन लोगों को आकर्षित करने के उद्देश्य से किया गया होगा।

यद्यपि विदेशी विद्वानों ने इन मूर्तियों का विश्लेषण ऐतिहासिक रूप से किया है किन्तु भारतीय सन्दर्भों में 'काम' जैसे गूढ़ विषय पर उनकी प्रतिक्रिया पूर्ण रूपेण स्वीकार नहीं की जा सकती है। अलेक्ज़ेण्डर कनिंघम ने काम मूर्तियों की प्रशंसा तो की है, लेकिन इन्हें अत्यन्त अश्लील कहा है। जेम्स फर्ग्युसन ने भी इन मूर्तियों को अश्लील माना है, जबकि पर्सी ब्राऊन ने इन मूर्तियों की कलात्मकता की तो प्रशंसा की किन्तु वह भी मन्दिर में इनकी उपस्थिति के उद्देश्य को नहीं समझ सका। इसलिए उसने भी मन्दिर के दीवारों पर इनके अंकन को अनुचित ही माना है।

वास्तविकता तो यह है कि मिथुन मूर्तियाँ भारतीय कला के एक

अनिवार्य अंग को अभिव्यक्ति देती रही हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ इनकी अभिव्यक्ति में भी विभिन्नता आती गई। लगभग दो हजार वर्षों से काम-मूर्तियों का अंकन गुजरात से आसाम तक तथा कश्मीर से केरल तक विभिन्न रूपों में होता रहा है।

खजुराहो की मिथुन मूर्तियों के अंकन में तन्त्र का भी प्रभाव देखा जा सकता है। तन्त्र के प्रभाव से जैन एवं बौद्ध धर्म भी अछूते नहीं रह सके। यही कारण है कि जैन मन्दिरों पर भी मिथुन मूर्तियों का अंकन हो गया। यद्यपि गुजरात, राजस्थान और दक्षिण के जैन मन्दिरों में ऐसे अंकन विरल ही हैं। यह भी हो सकता है कि जैन और हिन्दू मन्दिरों के शिल्पी एक हो रहे हों और उन्होंने जैन मन्दिरों पर भी मिथुन मूर्तियों का अंकन कर दिया हो। साथ ही यह उस युग की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक भी हो सकता है।

खजुराहो के जैन मन्दिरों के वर्ग में लगभग सभी मन्दिरों पर काम दृश्यों का अंकन किसी न किसी रूप में किया गया है। यदि सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हिन्दू मन्दिरों की अपेक्षा जैन मन्दिरों के उत्तरंगों पर दीवारों पर तथा कतिपय मन्दिरों के गर्भगृह पर कामदृश्यों का श्लील अंकन ही किया गया है।

खजुराहो के जैन मन्दिरों से प्राप्त काम-मूर्तियों को निम्न श्रेणो में विभाजित किया जा सकता है—

प्रथम श्रेणी	अप्सरा
द्वितीय श्रेणी	दम्पति
तृतीय श्रेणी	आलिंगनबद्ध मूर्तियाँ
चतुर्थ श्रेणी	कामरत मूर्तियाँ

अप्सरा :

जैन मन्दिरों पर अप्सरा मूर्ति का अंकन प्रचुर रूप से किया गया है। इस श्रेणी में अप्सराओं एवं नायिकाओं की वे समस्त मूर्तियाँ सम्मिलित हैं, जो विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ उत्कीर्ण हैं। यद्यपि इन मूर्तियों में नग्नता प्रदर्शित की गई है फिर भी ये मुद्राओं एवं भाव भंगिमाओं की दृष्टि से कलात्मक उत्कृष्टता को अभिव्यक्त करती हैं। प्रायः सभी जैन मन्दिरों पर अप्सरा का कलात्मक अंकन किया गया है, उदाहरण स्वरूप कहीं अप्सरा मूर्ति एक लज्जावान् स्त्री की भाँति

निर्मित है, जो अपने प्रेमी को आते देखकर अपने मुख को दोनों हाथों से ढक लेती है तो कहीं वह अपने प्रेमी का गर्व पूर्वक अवलोकन कर रही है। एक स्थल पर सद्यः स्नान की हुई अप्सरा का भी अंकन है। एक अन्य स्थल पर एक अप्सरा अत्यन्त ही कलात्मक ढंग से अपने शरीर को घुमा कर अपने अंगों का अवलोकन कर रही है। इसी प्रकार अप्सरा मूर्तियाँ कहीं अपने वक्ष को स्पर्श करती हुई प्रदर्शित हैं तो कहीं बाँसुरी बजाते हुये, नृत्य करते हुये, प्रेमी को पत्र लिखते हुये अपने पैरों से काँटा निकालते हुये, दर्पण में मुखावलोकन करते हुये अंकित हैं।

ये सभी मूर्तियाँ अत्यन्त ही जीवंत हैं। ये मूर्तियाँ मन्दिर के बाह्य एवं आन्तरिक दीवारों पर गर्भगृह में, भक्तों के मध्य पूजागृह में पूजा करते हुये आदि विभिन्न प्रकार से अंकित हुई हैं। कलाकार ने पूरी स्वतन्त्रता के साथ इनका अंकन किया है; साथ ही उसने प्रतिमाशास्त्रीय निर्देशों का भी पूरी तरह पालन किया है। इनमें भावनाओं को मूर्त्त रूप प्रदान करने के साथ-साथ यथार्थता पर भी बल दिया गया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण एक नायिका के नितम्ब एवं स्तनों पर नाखून का अंकन है।

अप्सराओं का अंकन सामान्य रूप से खजुराहो के हिन्दू एवं जैन सभी मन्दिरों पर प्राप्त होता है। पार्श्वनाथ मन्दिर एवं आदिनाथ मन्दिर पर उत्कीर्ण अप्सरा मूर्तियाँ वास्तव में तत्कालीन कलात्मक श्रेष्ठता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

दम्पति

दम्पति (युगल) मूर्तियों का अंकन भारतीय कला में प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है, जैन मन्दिरों में अधिकांशतः हिन्दू देवो-देवताओं को साथ-साथ युगल रूप में खड़ा किया गया है। इन मूर्तियों में बायें ओर देवी मूर्तियों का विभिन्न मुद्राओं में अंकन किया गया है। युगल के रूप में दम्पति का अंकन ब्राह्मण, बौद्ध और जैन आदि लगभग सभी कलाकेन्द्रों पर किसी न किसी रूप में किया जाता रहा है। खजुराहो में, विशेषकर जैन मन्दिरों पर इनका अंकन अत्यन्त ही साधारण एवं सहज भाव से किया गया है। मन्दिर के दीवारों पर, उत्तरंगों पर, छोटे-छोटे तोरणों पर इनका अंकन प्राप्त होता है। इनमें उन्हें अन्य मैथुनरत युगलों के विपरीत अत्यन्त ही सरल रूप में प्रदर्शित किया गया है। अधिकांश मूर्तियों में पुरुष का एक हाथ स्त्री के कन्धे पर है तथा दूसरा हाथ स्त्री के

हाथ को पकड़े हुये हैं। कहीं-कहीं निरूपण में भिन्नता भी प्राप्त होती है। कहीं-कहीं पुरुष स्त्री को पुष्प अर्पित करते हुये प्रदर्शित किया गया है। प्रायः इस प्रकार के अंकन भी प्राप्त होते हैं, जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि पुरुष बायीं ओर मुड़कर जा रहा है तथा स्त्री उसकी भुजा को अपने हाथ से पकड़े हुये है।

दम्पति मूर्तियाँ अधिकांशतः देवताओं से सम्बन्धित हैं, जो स्थानक मुद्रा में या अपने शक्तियों के साथ बैठी हुई निरूपित हैं।

आलिंगनबद्ध-मूर्तियाँ

जैन मन्दिरों में आलिंगनबद्ध मूर्तियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। यद्यपि पार्श्वनाथ मन्दिर एवं आदिनाथ मन्दिर की भित्तियों पर कुछ आलिंगन-बद्ध सौम्य मूर्तियों का अंकन हुआ है। ये मूर्तियाँ रतिक्रिया रत नहीं प्रदर्शित की गई हैं किन्तु इनकी मुद्रायें आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का अद्भुत समन्वय लिये हुये हैं। भावनात्मक सम्बन्ध एवं प्राकृतिक झुकाव के रूप में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अनन्तकाल से चला आ रहा है। इसी तथ्य को अत्यन्त सजीवता के साथ मूर्तियों में निरूपित करने की चेष्टा स्पष्ट दृष्टिगत होती है। मूर्तियों की आँखें स्पष्ट रूप से अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करती प्रतीत होती हैं। अधमुंदी आँखों में काम भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

कामरत-मूर्तियाँ

काम-भावना का यथार्थ चित्रण खजुराहो की अपनी विशिष्ट कलात्मक परम्परा रही है, जिसका अनुकरण हिन्दू मन्दिरों में अत्यधिक किया गया है जैन मन्दिरों पर काम भावना को एक शिष्ट रूप प्रदान किया गया है और उसे एक निश्चित सीमा में बाँधकर रखा है। वास्त-विकता तो यह है कि सम्प्रति कोई भी ऐसी मूर्ति प्राप्त नहीं है, जिसके आधार पर यथार्थता के नग्नरूप को प्रदर्शित किया गया हो।

यद्यपि शान्तिनाथ मन्दिर के द्वार-स्तम्भों पर उत्कीर्ण मूर्तियों को देख कर प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों को जान-बूझ कर, नष्ट करने की चेष्टा की गई है। इन्हें किसी कठोर वस्तु से घिसा गया प्रतीत होता है। साथ ही कुछ मूर्तियाँ टूटी भी हैं, जिन्हें देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि ये मूर्तियाँ कामरत अवस्था में होंगी। शान्तिनाथ मन्दिर के ही परकोटे में अन्य मन्दिर भी हैं, इन मन्दिरों की कामरत मूर्तियों को

देखकर प्रतीत होता है कि किन्हीं कारणवश इन्हें भी नष्ट करने की चेष्टा की गई थी। यह सम्भव है कि हिन्दू मन्दिरों के समान जैन मन्दिरों पर भी कामरत दृश्यों को अंकित किया गया होगा किन्तु कालान्तर में वैराग्य-वादी परम्परा के विरुद्ध होने के कारण इन्हें तोड़ दिया गया हो। यत्र-तत्र जो उदाहरण प्राप्त होते हैं, उससे इस कथन की सहज ही पुष्टि हो जाती है।

अन्त में हमें यही कहना होगा कि कला को जीवन्त बनाने का सजीव प्रयास खजुराहो के कलाकारों ने अपनी स्पन्दनीय कलाकृतियों के माध्यम से अत्यन्त ही सफल रूप से किया है। भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त ही सूक्ष्मता से एवं चातुर्यपूर्ण रूप से प्रस्तुत की गई है।

●

सप्तम अध्याय

उपसंहार

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो अपने स्थापत्य एवं मूर्ति अवशेषों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। खजुराहो चन्देल शासकों (लगभग ९वीं से १२वीं शती ई०) की राजधानी थी। राजनीतिक दृष्टि से समर्थ चन्देल शासकों के शासनकाल में कई हिन्दू एवं जैन मन्दिर और मूर्तियाँ बनीं। कला के क्षेत्र में सर्वाधिक निर्माण कार्य यशोवर्मन, धंग, गंड एवं विद्याधर के शासनकाल में हुए। धर्म-सहिष्णु चन्देल शासकों ने समान रूप से शैव, वैष्णव तथा जैन धर्मों को प्रश्रय एवं समर्थन दिया।

चन्देल शासकों ने जैन धर्म और जैन कला को भी पूरा समर्थन दिया था। यह बात स्पष्टतः खजुराहो के जैन स्थापत्य एवं मूर्ति अवशेषों के अध्ययन से ज्ञात होती है। खजुराहो के तीन अवशिष्ट जैन मन्दिरों पार्श्वनाथ (लगभग ९५० से ९७० ई०), घण्टाई (ई० १०वीं शती) एवं आदिनाथ (ई० ११वीं शती) में पार्श्वनाथ मन्दिर विशालतम और श्रेष्ठतम है। इसका निर्माण धंग (९५० से १००८ ई०) के शासन काल में हुआ था। अभिलेख में जैन आचार्य वासवचन्द्र को महाराजा धंग का गुरु बतलाया गया है, निश्चित ही उन्होंने शासक को जैन धर्म के प्रति आकृष्ट करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग किया होगा।

व्यापारियों एवं व्यवसायियों में प्राचीनकाल से ही विशेष लोकप्रिय रहे जैन धर्म एवं जैन कला को खजुराहो में भी इस वर्ग का पूरा समर्थन और सहयोग मिला।

खजुराहो में चन्देल शासकों के अन्तर्गत हिन्दू एवं जैन अवशेषों के सहअस्तित्व की सूचना प्राप्त होती है। खजुराहो की शिल्प सामग्री के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू एवं जैन सम्प्रदायों के लोगों का आपसी सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण था। इसका जीवित प्रमाण खजुराहो का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर है। इस मन्दिर की भित्तियों एवं अन्य भागों पर हिन्दू देवकुल के ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, बलराम, कुबेर आदि की स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ कई मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसके अतिरिक्त

लक्ष्मी, सरस्वती एवं ब्रह्माणी की भी कई मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह तथ्य प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इसी प्रसंग में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्ति का भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ जैन यक्षी चक्रेश्वरी के हाथों में अधिकांशतः चक्र, शंख और गदा प्रदर्शित हैं, जब कि जैन परम्परा में चक्रेश्वरी के हाथों में गदा और शंख के प्रदर्शन का निर्देश नहीं किया गया है। इस प्रकार गदा और शंख का प्रदर्शन चक्रेश्वरी के निरूपण में हिन्दू वैष्णवी का प्रभाव दर्शाता है। ये सभी बातें इस बात का स्पष्ट संकेत देती हैं कि प्रतिमालक्षण की दृष्टि से खजुराहो में जैन देवमूर्तियों के निरूपण को हिन्दू परम्परा की देव मूर्तियों ने प्रभावित किया था। जैन देवमूर्तियों पर हिन्दू प्रभाव हिन्दू धर्म के तुलनात्मक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली रहे होने की सूचना देता है। परन्तु इस प्रभाव को व्यक्त करने की प्रक्रिया में कहीं भी जैनधर्म की सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया गया है, और न ही सामान्यतः जैन परम्परा के विरुद्ध अंकन किये गये हैं। केवल पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर के समीप कामक्रिया में तल्लीन दो युगलों का अंकन ही इसका एक अपवाद है।

जैन देवमूर्तियों या प्रतिमाशास्त्र ने किसी सीमा तक खजुराहो के हिन्दू देव मूर्तियों को प्रभावित किया था या नहीं, यह अपने आप में शोध एवं उत्सुकता का विषय है ?

भारतीय कला में धर्म को मूर्तियों के माध्यम से ही स्थूल अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य का समय जैन देवकुल के विकास, विशेषतः प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से, विशेष महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि जैन देवकुल के अधिकांश देवताओं की रचना पाँचवीं-छठीं शती ई० में ही हो गई थी किन्तु उनके लाक्षणिक स्वरूप दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य ही निर्धारित हुये। जैन देवकुल में ६३ शलाकापुरुषों का उल्लेख है, जिनमें २४ जिन ही सर्वप्रमुख हैं। साहित्य और शिल्प दोनों में इन्हें सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। २४ जिनों के अतिरिक्त ६३ शलाकापुरुषों की सूची में १२ चक्रवर्तियों, ९ बलदेवों, ९ वासुदेवों तथा ९ प्रतिवासुदेवों का उल्लेख है।

२४ जिनों के पश्चात् यक्ष-यक्षियों तथा महाविद्याओं को ही जैन देवकुल में सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई, जो जिनों के शासन देवता होते हैं। इस प्रकार

२४ जिनों के अलग-अलग २४ यक्षों और यक्षियों की सूची और उनके प्रतिमालक्षण निर्धारित हुये । **निर्वाणकलिका** और **प्रतिष्ठासारसंग्रह** यक्षों और यक्षियों के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित ग्यारहवीं और बारहवीं शती ई० के दो प्रारम्भिकतम ग्रन्थ हैं । प्रारम्भिक ग्रन्थों में उल्लिखित अनेक विद्यादेवियों में से सोलह को लेकर सोलह महाविद्याओं की एक सूची तैयार की गई, जिनका अंकन श्वेताम्बर कलाकेन्द्रों पर विशेष लोकप्रिय था ।

जिनों, यक्ष-यक्षिओं और महाविद्याओं के अतिरिक्त जैन देवकुल में लक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र, नैगमेषी, गणेश, चौसठ-योगिनी, अष्टदिक्पाल, नवग्रह आदि का भी प्रमुखता से उल्लेख प्राप्त होता है ।

जिन मूर्तियों का अंकन मौर्यकाल में प्रारम्भ हुआ । प्राचीनतम जिन मूर्ति लोहानीपुर से मिली है । जिन मूर्तियों के विकास की दृष्टि से कुषाण तथा गुप्तकाल का विशेष महत्त्व है । कुषाणकाल में आदिनाथ, सम्भवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । मथुरा से मिली इन मूर्तियों में केवल आदिनाथ, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के साथ क्रमशः जटाओं, बलराम-कृष्ण और सात-सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन हुआ है । गुप्तकाल में जिनों के साथ लांछनों, अष्टप्रतिहार्यों और यक्ष-यक्षी युगलों का अङ्कन प्रारम्भ हुआ । श्वेताम्बर परम्परा की प्रारम्भिक मूर्तियाँ भी इसी काल की हैं । राजगिर की नेमिनाथ और भारत कलाभवन, वाराणसी की महावीर की गुप्तकालीन मूर्तियों में ही सर्वप्रथम पारम्परिक लांछन (शंख और सिंह) प्रदर्शित हुये । अकोटा की आदिनाथ की श्वेताम्बर मूर्ति में यक्ष-यक्षी का अंकन हुआ है । पूर्ण विकसित जिन मूर्तियाँ लगभग नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं और मुख्यतः सभी क्षेत्रों से प्राप्त होती हैं । इनमें खजुराहो के अतिरिक्त मथुरा, देवगढ़, आबू आदि मुख्य हैं ।

खजुराहो की जैन मूर्तियाँ दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं । खजुराहो की जैन देवमूर्तियों के समूह में जिनों की सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं, जिनकी संख्या १५० से अधिक है । प्रतिमाशास्त्रीय दृष्टि से खजुराहो की जिन मूर्तियाँ पूर्ण विकसित जिन मूर्तियाँ हैं । इनमें जिनों के साथ लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों, अष्टप्रतिहार्यों का नियमित प्रदर्शन हुआ है । इनके अतिरिक्त मुख्य मूर्ति के पार्श्व में छोटी-छोटी जिन आकृतियों (अधिकांशतः २३ या २४) नवग्रहों, उपासकों, धर्मचक्र एवं कुछ अन्य सहायक आकृतियों का भी अंकन हुआ है । आदिनाथ

पार्श्वनाथ और महावीर खजुराहो में सर्वाधिक लोकप्रिय थे। २४ जिनों को मूर्तियाँ खजुराहो में उत्कीर्ण नहीं हुईं। उपर्युक्त ३ जिनों के अतिरिक्त हमें अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमितनाथ, पद्मप्रभ, मुनिसुव्रत एवं नेमिनाथ की भी मूर्तियाँ मिली हैं। केवल आदिनाथ, नेमिनाथ एवं कुछ उदाहरणों में पार्श्वनाथ के साथ ही पारम्परिक यक्षों एवं यक्षियों का अंकन हुआ है। इनके यक्ष और यक्षी क्रमशः गोमुख-चक्रेश्वरी, कुबेर-अम्बिका एवं धरणेन्द्र-पद्मावती हैं।

स्वतन्त्र मूर्तियों के पश्चात् खजुराहो में जिनों की द्वितीर्थी मूर्तियाँ ही सर्वाधिक लोकप्रिय थीं। इनमें दो जिनों को समान स्तर पर प्रदर्शित किया गया है। इन मूर्तियों की अन्य विशेषतायें सामान्य जिन मूर्तियों के समान हैं। अन्यत्र विशेष लोकप्रिय चौमुखी मूर्तियों का अंकन खजुराहो में लोकप्रिय नहीं था। खजुराहो में चौमुखी जिन मूर्ति का केवल एक उदाहरण मिला है।

खजुराहो में यक्षों का अंकन लोकप्रिय नहीं था। केवल कुबेर यक्ष की ही कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें कुबेर पर्स (धन के थैले) से युक्त हैं। यक्षियों में जैनधर्म के सर्वाधिक लोकप्रिय जिनों आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की चक्रेश्वरी अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका की ही मूर्तियाँ मिली हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ अम्बिका और चक्रेश्वरी की हैं। अम्बिका के निरूपण में खजुराहो के कलाकारों ने सबसे अधिक परम्परा का पालन किया है। अन्य यक्षियों के सन्दर्भ में परम्परा का पालन केवल कुछ विशिष्ट लक्षणों तक ही सीमित है।

महाविद्या मूर्तियों का एक मात्र सम्भावित उदाहरण आदिनाथ मन्दिर पर देखा जा सकता है। इन प्रमुख मूर्तियों के अतिरिक्त लक्ष्मी, सरस्वती, जैन युगलों एवं आचार्यों, अष्टदिक्पालों और नवग्रहों तथा मांगलिक स्वप्नों के भी अंकन खजुराहो में प्राप्त होते हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, अष्टदिक्पाल एवं नवग्रह के चित्रण में हिन्दू परम्परा का प्रभाव प्राप्त होता है। सारांशतः खजुराहो की जैन मूर्तियों के अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि खजुराहो में पूर्ण विकसित जैन देवकुल के अधिकांश देवों को आमूर्तित किया गया है और उनके निरूपण में, कम से कम मुख्य विशेषताओं के निरूपण में, परम्पराओं का पालन किया गया है। इस प्रक्रिया में कहीं-कहीं खजुराहो की दिगम्बर परम्परा की मूर्तियों पर श्वेताम्बर परम्परा का भी प्रभाव देखा जा सकता है, जैसे—दिगम्बर परम्परा सम्मत द्विभुज के स्थान पर चतुर्भुज अम्बिका। ●

परिशिष्ट

जिन-प्रतिमालक्षण

जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
आदिनाथ (ऋषभनाथ)	वृषभ	गोमुख	चक्रेश्वरी
अजितनाथ	गज	महायक्ष	अजितवाला
सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी
अभिनन्दननाथ	कपि	यज्ञेश्वर	काली (श्वे०) वज्रश्रृंखला (दि०)
सुमतिनाथ	क्रौंच	तुम्बरू	महाकाली (श्वे०) पुरुषदत्त (दि०)
पद्मप्रभ	पद्म	कुसुम (श्वे०) पुष्प (दि०)	श्यामा (श्वे०) मनोवेगा (दि०)
सुपार्श्वनाथ	स्वास्तिक	मांतग (श्वे०) वरनन्दी (दि०)	शान्ता (श्वे०) काली (दि०)
चन्द्रप्रभ	शशि	विजय (दि०) श्यामा (श्वे०)	भृकुटि (श्वे०) ज्वालामालिनी (दि०)
सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त)	मकर	अजित	सुतारा (श्वे०) महाकाली (दि०)
शीतलनाथ	श्रीवत्स	ब्रह्मा	अशोका (श्वे०) मानषी (दि०)
श्रेयांसनाथ	खड्गी(गेंडा)	यक्षेश (या यक्षेश्वर)	मानवी (श्वे०) गौरी (दि०)
वासुपुज्य	महिष	कुमार	गरुडा (श्वे०) यक्षी (दि०)
विमलनाथ	शूकर	षण्मुख	विदिता (श्वे०) वैरोटी (दि०)
अनंतनाथ	श्येन	पाताल	अनन्तमीत

धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	कन्दर्प (श्वे०) मानवी (दि०)
शान्तिनाथ	मृग	गरुड (दि०)	महामानसी (दि०) निर्वाणी (श्वे०)
कुन्थुनाथ	छाग	गन्धर्व	विजया (दि०)
अरनाथ	नन्द्यावर्त	यक्षेन्द्र (या महेन्द्र)	विजयादेवी (दि०)
मल्लिनाथ	घट	कुबेर	धरणीप्रिया (श्वे०) अपराजिता (दि०)
मुनिसुव्रत	कूर्म	वरुण	नरदत्ता (श्वे०) बाहुरूपणी दि०)
नमिनाथ	नीलोत्पल	भृकुटि	गान्धारी (श्वे०) चामुन्डी दि०)
नेमिनाथ	शंख	गोमेध (श्वे०) सरवाहन (दि०)	अम्बिका या कुष्माण्डी
पार्श्वनाथ	सर्प	धरणेन्द्र	पद्मावती
महावीर (या वर्धमान)	सिंह	मातंग	सिद्धायिका

●

नोट—श्वे० = श्वेताम्बर, दि० = दिगम्बर ।

सन्दर्भ-सूची

(क) मूल ग्रन्थ-सूची

आदिपुराण : (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ, मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थ संख्या ८, वाराणसी, १९६३।

कल्पसूत्र : (भद्रबाहुकृत), अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड २२, भाग १ (आक्सफोर्ड १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०)।
सं० देवेन्द्रमुनि शास्त्री, शिवान, १९६८।

तिलोयपण्णत्ति : (यतिवृषभकृत), सं० आदिनाथ उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला १, शोलापुर, १९४३।

देवतामूर्ति प्रकरण : (सूत्रधारमण्डनकृत), सं० उपेन्द्रमोहन सांख्यतीर्थ, संस्कृत सीरीज १२, कलकत्ता, १९३६।

पउमचरियं : (विमलसूरिकृत), भाग १, सं० एच० जैकोबी, अनु० शान्तिलाल एम० वोरा, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी सीरीज ६, वाराणसी, १९६२।

पद्मपुराण (रविषेणकृत), भाग १, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ, मूर्तिदेवी जैन ग्रंथमाला, संस्कृत ग्रंथांक २०, वाराणसी, १९५८।

प्रतिष्ठा तिलकम् : (नेमिचन्द्रकृत), शोलापुर।

प्रतिष्ठा सारोद्धार : (आशाधरकृत), सं० मनोहरलाल शास्त्री, बम्बई १९१७ (वि० सं० १९७४)।

प्रवचन सारोद्धार : (नेमिचन्द्रसूरिकृत), सिद्धसेनसूरि की टीका सहित, अनु० हीरालाल हंसराज, देवचन्द्र लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार संख्या ५८, बम्बई १९२८।

बृहत्संहिता : (बराहमिहिरकृत) सं० ए० झा, वाराणसी, १९५९।

मानसार खं० ३, अनु० प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहाबाद।

रूपमण्डन : (सूत्रधारमण्डनकृत), सं० बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, वि० सं० २०२१।

हरिवंशपुराण : (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थांक २७, वाराणसी १९६२।

(ख) सहायक ग्रन्थ एवं लेख-सूची

अग्रवाल, आर० सी० "सम इन्ट्रेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑफ द जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड", इ० हि० क्वा०, खं० ३२, अं० ४, दिसम्बर १९५६, पृ० ४३४-३८।

अग्रवाल, वी० एस० : १. "सम ब्रह्मैनिकल डोटीज इन जैन रैलिजस आर्ट", जैन एण्टि० क्वेरी, खं० ३, अं० ४, मार्च १९३८, पृ० ८३-९२।

२. "सम आइकानोग्राफिक टर्मस फ्राम जैन इन्स्क्रीप्शन्स", जैन एण्टि० क्वेरी, खं० ५, १९३९-४०, पृ० ४३-४७।

३. "मथुरा आयागपट्टज", ज० यू० पी० हि० सो०, खं० १६, भाग १, १९४३, पृ० ५८-६१।

४. "केटलाग ऑफ द मथुरा म्यूजियम", भाग ३, ज० यू० पी० हि० सो०, खं० २३, १९५०, पृ० ३५-१४७।

५. "इण्डियन आर्ट", भाग १, वाराणसी १९६५।

अवस्थी, रामाश्रय : खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, आगरा, १९६७।

कनिघम, ए० "आर्कियोलाजिक सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट", वर्ष १८६२-६५, खं० १-२, वाराणसी, १९७२ (पु० मु०), वर्ष १८७१-७२, खं० ३, वाराणसी, १९६६ (पु० मु०)।

कुमारस्वामी, ए० के० : यक्षज, (वाशिंगटन, १९२८), दिल्ली १९७१ (पु० मु०)।

गुप्ता, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन० "गंधावल और जैन मूर्तियाँ" अनेकान्त, खं० १९, अं० १-२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० १२९-३०।

गुप्ता, पी० एल० : "द पटना म्यूजियम केटलाग ऑफ द एण्टिक्वीटिज", पटना, १९६५।

गुप्ते, आर० एस० आइकानोग्राफी ऑफ द हिन्दूज, बुद्धिस्ट, ऐण्ड जैनाज, बम्बई, १९७२।

घोष, ए० एवं अन्य (संपादक) : जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर, ३ खण्ड, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७४-७५।

चंदा, आ० पी० : १. "इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता", आ० स० इं० ऐ० रि०, १९२५-२६, पृ० १५१-५४।

२. "जैन रिमेन्स एट राजगिर", आ० स० इं० ऐ० रि०, १९२५-२६, पृ० १२१-२७।

३. "सिन्ध फाइव थाउजण्ड ईयरस एगो", मार्डन रिव्यू, खं० ५२, अं० २, अगस्त १९३२, पृ० १५१-६०।

४. "मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन द ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, १९३६।

चन्द्र, जगदीश : "जैन आगम साहित्य में यक्ष", जैन एण्टिक्वेरी, खं० ७, अं० २, दिसम्बर १९४१, पृ० ९७-१०४।

चन्द्र, प्रमोद : "स्टोन स्कल्पचर इन द एलाहाबाद म्यूजियम", बम्बई, १९७० ।

चक्रवर्ती, एस० एन० : "नोट ऑन एन इन्सक्राइब्ड ब्रोन्ज जैन इमेज इन द प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम", बु० प्रि० वे० म्यू० वे० ई०, अं० ३, १९५२-५३, (१९५४), पृ० ४०-४२।

चौधरी, गुलाबचन्द्र : पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज (सरका ६५०, ए० डी० टू० १३०० ए० डी०) अमृतसर, १९६३ ।

जायसवाल, के० पी० : १. "जैन इमेज ऑफ मौर्य पिरियड", जर्नल बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०-३२ ।

२. "ओल्डेस्ट जैन इमेजेज़ डिस्कवर्ड", जैन एन्टिक्वेरी, खं० ३, अं० १, जून १९३७, पृ० १७-१८ ।

जेनास, ई० तथा आबोयर, जे : "खजुराहो", हेग, १९६० ।

जैन, कामता प्रसाद : १. "जैन मूर्तियाँ", जैन एण्टिक्वेरी, खं० २, अं० २, अं० १, १९३५, पृ० ६-१७ ।

२. "शासनदेवी अम्बिका और उनकी मान्यता का रहस्य", जैन एण्टिक्वेरी, खं० २०, अं० १, जून १९५४, पृ० २८-४१ ।

जैन, छोटे लाल "जैन बिब्लियोग्राफी", कलकत्ता, १९४५ ।

जैन, नीरज : खजुराहो के जैन मन्दिर, सतना, १९६७ ।

जैन ,नीरज तथा जैन, दशरथ : जैन मान्यूमेन्ट्स ऐट खजुराहो, सतना, १९६८ ।

जैन, वालचन्द्र : "जैन प्रतिमा लक्षण" अनेकान्त, खं० १९, अं० ३, अगस्त १९६६, पृ० २०४-१३ ।

जैन, शशिकान्त : "सम कामन ऐलिमेण्ट्स इन द जैन एण्ड हिन्दू पैनथिआनस्-१-यक्षज़ ऐण्ड यक्षणिज", जैन एण्टिक्वेरी, खं० १८, अं० २, दिसम्बर १९५२, पृ० ३२-३५; खं० १९, अं० १, जून १९५३, पृ० २१-२३।

जैनी, जे० एल० : "सम नोट्स आन द दिगम्बर जैन आइकानोग्राफी," इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० ३२, दिसम्बर १९०४, पृ० ३३०-३२।

जोशी, एन० पी० : मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६।

डे० सुधीन : "चौमुख-ए सिम्बालिक जैन आर्ट", जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० २७-३०।

ढाकी, एम० ए० : "सम अर्ली जैन टेम्पुल्स इन वेस्टर्न इण्डिया", म० जै० वि० गौ० जु० वा०, बम्बई १९६८, पृ० २९०-३४७।

तिवारी, एम० एन० पी० : १. "भारत कलाभवन का जैन पुरातत्त्व" अनेकान्त, वर्ष २४, अं० २, जून १९७१, पृ० ५१-५२, ५८.

२. "ए नोट आन द आइडेन्टीफिकेशन आफ ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कलाभवन, वाराणसी," जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० ४१-४३।

३. "खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर की रथिकाओं में जैन देवियाँ", अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ४, अक्तूबर १९७१, पृ० १८३-८४।

४. "खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार की मूर्तियाँ", अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ५, दिसम्बर १९७१, पृ० २१८-२१।

५. "खजुराहो के जैन मन्दिरों के डोर लिंटल्स पर उत्कीर्ण जैन देवियाँ", अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ६, फरवरी १९७२, पृ० २५१-५४।

६. "उत्तर-भारत में जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तिगत अवधारणा", अनेकान्त, वर्ष २५, अं० १, मार्च-अप्रैल १९७२, पृ० ३५-४०।

७. "रिप्रजेन्टेशन ऑफ सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स ऑफ खजुराहो", जर्नल गुजरात रिसर्च सोसाइटी, खं० ३४, अं० ४, अक्तूबर १९७२, पृ० ३०७-१२।

८. " ए नोट आन एन इमेज ऑफ राम एण्ड सीता आन द पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो", जैन जर्नल, खं० ८, अं० १, जुलाई १९७३, पृ० ३०-३२।

९. "ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया", ईस्ट ऐण्ड वेस्ट, खं० २३, अं० ३-४, सितम्बर-दिसम्बर १९७३, पृ० ३४७-५३।

१०. "द आइकानोग्राफी ऑफ द इमेजेज़ सम्भवनाथ ऐट खजुराहो", जर्नल गुजरात रिसर्च सोसाइटी, खं० ३५, अं० ४, अक्टूबर १९७३, पृ० ३-९।

११. "द आइकनोग्राफी आफ द सिक्सटीन जैन महाविद्याज़ एज रिप्रजेन्टेड इन द सीलिंग ऑफ द शान्तिनाथ टेम्पल, कुंभारिया", संबोधि, खं० २, अं० ३, अक्तूबर १९७३, पृ० १५-२२।

१२. "उत्तर-भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमा निरूपण", अनेकान्त,

वर्ष २७, अं० २, अगस्त १९७४, पृ० ३४-४१ ।

१३. "ए यूनीक इमेज ऑफ ऋषभनाथ ऐट ऑर्किअलाजिकल म्यूजियम खजुराहो", ज० ओ० इं०, खं० २४, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४७-४९।

१४. "इमेजेज ऑफ अम्बिका आन द जैन टेम्पल्स एट खजुराहो", ज० ओ० इं०, खण्ड २४, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४३-४६ ।

१५. "उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा निरूपण", संबोधि, खं० ३, अं० २-३, दिसम्बर १९७४, पृ० २७-४४।

१६. "द जिन इमेजेज ऑफ खजुराहो विद् स्पेशल रेफेरंस टू अजितनाथ", जैन जर्नल, खं० १०, अं० १, जुलाई १९७५, पृ० २२-२५ ।

१७. "उत्तर भारत में जैन प्रतिमाविज्ञान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वर्ष १९७७ की अप्रकाशित पी-एच० डी० थीसिस ।

१८. "जिन इमेजेज इन द आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो", महावीर ऐण्ड हिज टीचिंग्स, भगवान् महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव समिति, बम्बई, १९७७, पृ० ४०९-२८ ।

१९. "जैन तीर्थंकरों की द्वितीर्थी मूर्तियों का प्रतिमा निरूपण", जैन सिद्धान्त-भास्कर, (आरा), खं० ३०, अं० १, पृ० ३३-४० ।

त्रिपाठी, एल० के० : १. "इवोल्यूशन ऑफ टेम्पल आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया", पी-एच० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८।

१. "द एरोटिक स्कल्पचर्स ऑफ खजुराहो एण्ड देअर प्राबेबल एक्सप्लेनेशन", भारती, अं० ३, १९५९-६०, पृ० ८२-१०४।

दीक्षित, आर० के० : "द चन्देलज ऑफ द जेजाकभुक्ति ऐण्ड देयर टाइम्स", पी-एच० डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय।

देव, कृष्ण : १. "द टेम्पल्स ऑफ खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया" ऐन्शियण्ट इण्डिया, अं० १५, १९५९, पृ० ४३-६५।

२. 'टैम्पल्स ऑफ नार्थ इण्डिया", नई दिल्ली १९६९।

नाहटा, अगरचन्द : "भारतीय वास्तुशास्त्र में जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य", अनेकान्त, वर्ष २०, अं० ५, दिसम्बर १९६७, पृ० २०७-१५।

पाठक, विशुद्धानन्द : "उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, वाराणसी, १९७३।

प्रसाद, त्रिवेणी : "जैन प्रतिमा-विधान", जैन एण्टिक्वेरी, खं० ४, अं० १, जून १९३७, पृ० १६-२३।

बनर्जी, जे० एन० : "द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकानोग्राफी", कलकत्ता १९५६।

बनर्जी, प्रियतोष : "ए नोट आन द वरशिप ऑफ इमेजेज इन जैनिज्म", (सरका २०० बी० सी०—२०० ए० डी०), जर्नल बिहार रिसर्च सोसाइटी, खं० ३६, भाग १-२, १९५०, पृ० ५७-६५।

बर्जेस, जे० "दिगम्बर जैन आइकोनोग्राफी" इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० ३२, १९०३, पृ० ४५९-६४।

बाजपेयी, के० डी० : १. "जैन इमेज ऑफ सरस्वती इन द लखनऊ म्यूजियम", जैन एण्टिक्वेरी, खं० ११, अं० २, जनवरी १९४६, पृ० १-४।
२. मध्यप्रदेश की प्राचीन जैनकला", अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० ९८-९९, वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५-१६।

ब्राऊन, पर्सी इण्डियन आरकिटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पिरियडस्) बम्बई, १९७१ (पु० मु०)।

ब्रुन, क्लाज : १. "द फिगर ऑफ द टू लोअर रिलिफस आन द पार्श्वनाथ टेम्पल एट खजुराहो", आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, (सं० मोतीचन्द्र आदि), बम्बई, १९५६, पृ० ७-३५।
२. "आइकानोग्राफी ऑफ द लास्ट तीर्थंकर महावीर", जैनयुग, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६-३७।
३. "जैन तीर्थंज इन मध्या देश: चादपुर" जैनयुग, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७-७०।
४. "जैन तीर्थंज इन मध्यदेश "दुदही", जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९-३३।
५. "द जैन इमेजेज ऑफ देवगढ़", लिडेन, १९६९।

बोस, एन० एस० : हिस्ट्री ऑफ चन्देलज, कलकत्ता, १९५६।

व्यूहलर, जी० : १. "द दिगम्बर जैनज", इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० ७, १८७८, पृ० २८-२९।
२. "स्पेसिमेन्स ऑफ जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा", एपिग्राफिया इण्डिका, खं० २,

(कलकत्ता, १८९४), दिल्ली १९७० (पु० मु०), पृ० ३११-२३।

भट्टाचार्य, ए० के० : १. "सिम्बलिज्म एण्ड इमेज वर्शिप इन जैनिज्म", जैन एण्टिक्वेरी, खं० १५, अं० १, जून १९४९, पृ० १-६।

२. "जैन आइकानोग्राफी", आचार्य भिक्षु-स्मृति ग्रन्थ, (सं० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता १९६१, पृ० १९१-२००।

भट्टाचार्य, बो० : जैन आइकानोग्राफी", जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ (सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई), बम्बई, १९३६, पृ० ११४-२१)

भट्टाचार्य, बी० सी० : "द जैन आइकानोग्राफी", दिल्ली, १९७४ (पु० मु०)।

भट्टाचार्य, बोनायतोश : 'द इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८।

भन्डारकर, डी० आर० : १. "जैन आइकानोग्राफी", आ० सं० ई० ऐ० रि०, १९०५-०६, कलकत्ता, १९०८, पृ० १४१-४९।

२. "जैन आइकानोग्राफी-समवसरण", इण्डियन एन्टिक्वेरी, खं० ४०, मई १९११, पृ० १२५-३०।

मित्रा, देबला : "शासनदेवीज़ इन द खण्डगिरि केवस्", ज० ए० सो०, खं० १, अं० २, १९५९, पृ० १२७-३३।

रामचन्द्रन, टी० एन० : 'तिरूपरूत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स", भाग ३, मद्रास, १९३४।

रे, निहाररंजन : मौर्य एण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५।

विण्टरनित्स, एम० : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर, खण्ड २, (बुद्धिस्ट एण्ड जैन लिट्रेचर) कलकत्ता, १९३३।

शर्मा, आर० सी० : १. "द अर्ली फेज ऑफ जैन आइकानोग्राफी", जैन एण्टिक्वेरी, खं० २३, अं० २, जुलाई १९६५, पृ० ३२–३८ ३८ ।
२. "जैन स्कल्पचर्स ऑफ द गुप्त ऐज इन द स्टेट म्यूजियम, लखनऊ", म० जै० वि० गो० जु० वा०, बम्बई १९६८, पृ० १४३–५५ ।

शर्मा, बी० एन० : १. "तीर्थंकर सुपार्श्वननाथ की प्रस्तर प्रतिमा" अनेकान्त, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १५७.
२. "अनपब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन द नेशनल म्यूजियम", ज० ओ० इं०, खं० १९, अं० ३, मार्च १९७०, पृ० २७५–७८ ।
३. "जैन प्रतिमाएँ, दिल्ली, १९७९ ।

शास्त्री, अजय मित्र : "त्रिपुरी का जैन पुरातत्त्व", जैन मिलन, वर्ष १२, अं० २, दिसम्बर १९७०, पृ० ६९–७२ ।

शास्त्री, परमानन्द जैन : "मध्य भारत का जैन पुरातत्त्व", अनेकान्त, वर्ष १९, अं० १–२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० ५४–६९ ।

शाह, यू० पी० : १. "आइकोनोग्राफी ऑफ द जैन गाडेस अम्बिका", जर्नल यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे, खं० ९, १९४०-४१, पृ० १४७–६९ ।
२. "आइकोनोग्राफी ऑफ द जैन गाडेस सरस्वती", जर्नल यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे, खं० १० (न्यू सीरीज), सितम्बर १९४१, पृ० १९५–२१८ ।
३. "आइकोनोग्राफी ऑफ द सिक्सटीन जैन महाविद्याज", ज० इं० सो० ओ० आ०, खं० १५, १९४७, पृ० ११४-७७

४. "फारेन एलिमेन्ट्स इन जैन लिट्रेचर" इं० हि० क्वा०, खं० २९, अं० ३, सितम्बर १९५३, पृ० २६०–६५ ।

५. "यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्-रेचर", ज० ओ० इं०, खं० ३, अं० १, सितम्बर १९५३, पृ० ५४–७१ ।

६. "स्टडीज इन जैन आर्ट", बनारस, १९५५ ।

७. "पेरेण्टस ऑफ द तीर्थंकरज", बु० प्रिं० वे० म्यु० वे० इं०, अं० ५, १९५५–५७, पृ० २४–३२ ।

८. "अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९ ।

९. "जैन स्टडीज इन स्टोन इन द दिल-वाडा टेम्पल, माउण्ट आबू", जैनयुग, सितम्बर १९५९, पृ० ३८-४० ।

१०. "इन्ट्रोडक्शन ऑफ शासनदेवताज इन जैन वर्शिप" प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑफ द आल इण्डिया ओरिण्यटल कान्फरेन्स, २०वां अधि-वेशन. भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पूना, १९६१, पृ० १४१–५२ ।

११. "आइकोनोग्राफी ऑफ चक्रेश्वरी, द यक्षी ऑफ ऋषभनाथ", ज० ओ० इ०, खं० २०, अं० ३, मार्च १९७१, पृ० २८०–३११ ।

१२. "ए फ्यू जैन इमेजेज इन द भारत कलाभवन, वाराणसी", छवि, भारत कलाभवन, वाराणसी, १९७१, पृ० २३३–३४ ।

१३. "बिग्निंग्स ऑफ जैन आइकानो-ग्राफी", सं० पु० प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० १-१४ ।

१४. "यक्षिणी ऑफ द ट्वेन्टी फोर्थ जिन महावीर", ज० ओ० इं०, खं० २२, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७२, पृ० ७७-७८।

श्रीवास्तव, बी० एन० : "सम इन्ट्रेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ, सं० पु० प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० ४५--५२।

संकलिया, एच० डी० : १. "द अर्लियस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड", जर्नल रायल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, जुलाई १९३८, पृ० ४२६--३०।

: २. "जैन आइकानोग्राफी", न्यू एण्टिक्वेरी, खं० २, १९३९-४०, पृ० ४९७-५२०।

३. "जैन यक्षज एण्ड यक्षणीज", बु० ड० का० रि० इं०, खं० १, अं० २--४, १९४०, पृ० १५७-६८।

४. "जैन मोन्यूमेन्ट्स फ्राम देवगढ़", ज० इं० सो० ओ० आ०, खं० ९, १९४१, पृ० ९७-१०४।

सिंह, जे० पी० : "आस्पेक्टस ऑफ अर्ली जैनिज्म", वाराणसी, १९७२।

सिम्दार, जे० सी० : "स्टडीज इन द भगवतीसूत्र" मुजफ्फरपुर, १९६४।

स्मिथ, बी० ए० : "द जैन स्तूप एण्ड अदर एन्टिक्वीटीज ऑफ मथुरा, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०)।

चित्र-सूची

चित्रसंख्या **विवरण**

१. आदिनाथ मन्दिर।

२. पार्श्वनाथ मन्दिर; पश्चिमी देवकुलिका की आदिनाथ मूर्ति।

३. महावीर, पुरातात्त्विक संग्रहालय खजुराहो (क्रमांक १७३१)।

४. खजुराहो की आदिनाथ मूर्ति, सम्प्रति भारत कलाभवन. वाराणसी (क्रमांक २१०७३) में सुरक्षित।

५. आदिनाथ मन्दिर के पिछले भाग में खुले संग्रहालय की मूर्तियाँ: आदिनाथ (मध्य), एवं द्वितीर्थी जिन मूर्तियाँ।

६. आदिनाथ मन्दिर के पिछले भाग में स्थित खुले संग्रहालय की जिन मूर्तियाँ।

७. आदिनाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार की मूर्तियाँ।

८. उत्तरंग-नवग्रह तथा अम्बिका, चक्रेश्वरी एवं पद्मावती यक्षियाँ; जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो।

९. जैन युगल, शांतिनाथ मन्दिर।

१०. आदिनाथ मन्दिर की भित्ति की रथिका मूर्तियाँ (सम्भवतः महाविद्या मूर्तियाँ)।

११. पार्श्वनाथ मन्दिर दक्षिणी भित्ति, बायें से दिक्पाल शिव, विष्णु की आलिंगन और जैन यक्षी अम्बिका की मूर्तियाँ।

१२. खजुराहो की पत्र लिखती हुई अप्सरा मूर्ति, सम्प्रति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (क्रमांक २४२२८) में संग्रहीत।

●

नोट: चित्र सं० ४, ८, ९, १२, अमेरिकन इन्स्टीच्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी तथा चित्र सं० २, ५, ६, डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी के सौजन्य से।

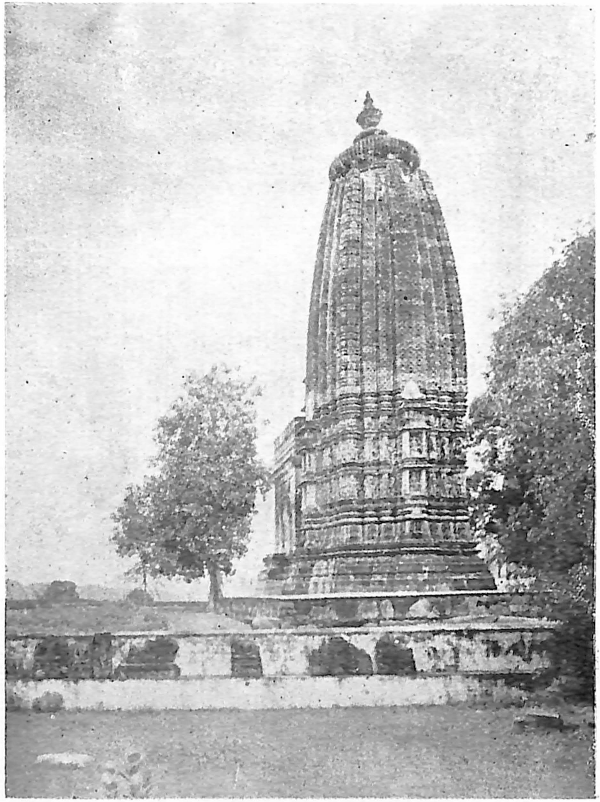

१. आदिनाथ मन्दिर, खजुराहो

२. आदिनाथ, खजुराहो

३ महावीर, खजुराहो

४. आदिनाथ, खजुराहो

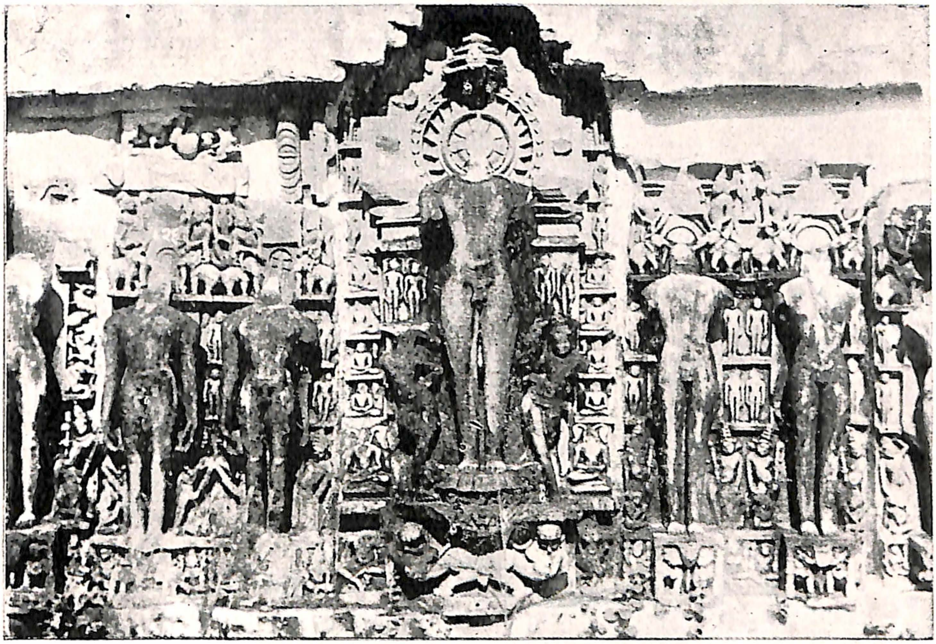

५ खुले संग्रहालय में उपलब्ध जिन-मूर्तियाँ

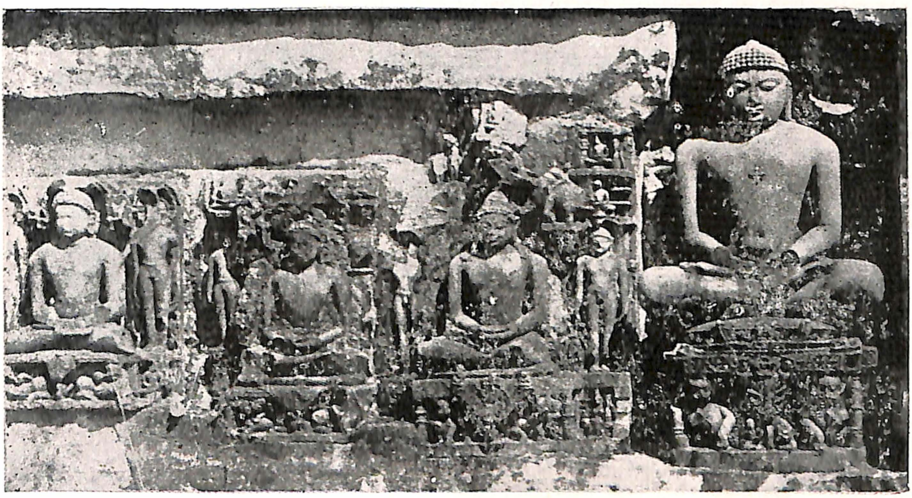

६. खुले संग्रहालय में उपलब्ध जिन-मूर्तियाँ

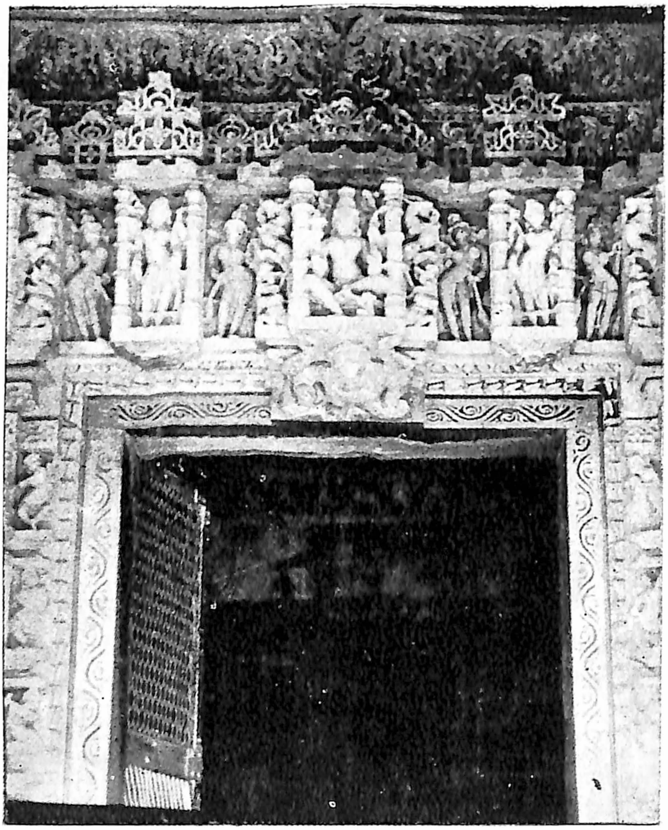

७. आदिनाथ मन्दिर का प्रवेश द्वार

८. जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो में उपलब्ध उत्तरंग

९. जैन युगल

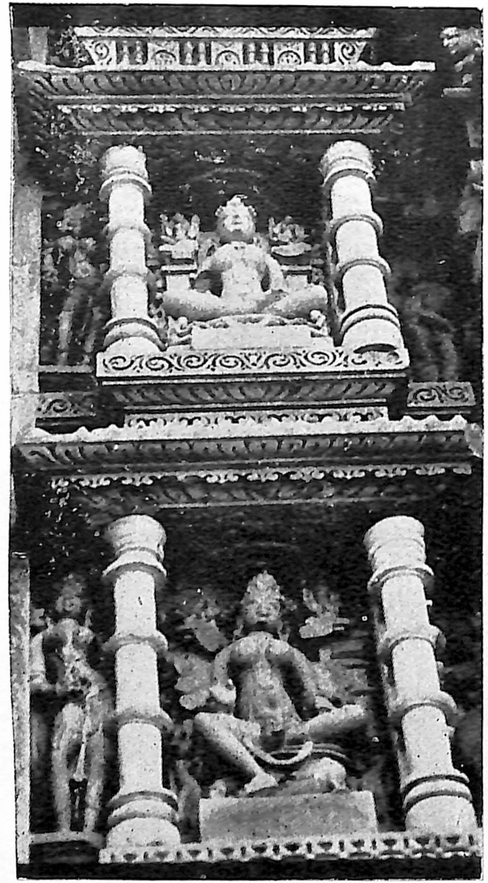

१०. भित्ति-मूर्तियां

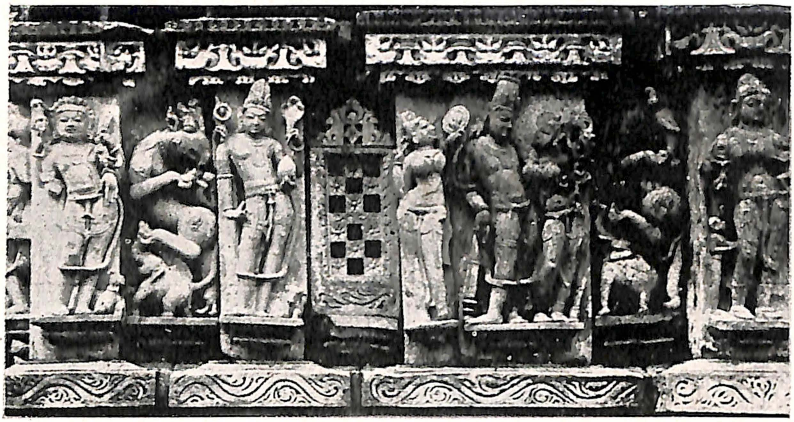

११. पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्ति-मूर्तियां

१२. अप्सरा-मूर्ति

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED
Acc. No. 94567
Date 09/3/2000
SIMLA

Library IIAS, Shimla
H 732.411 33 V 59 K
00094567